इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १ अंक ४ पौष मास कलियुगाब्द ५११० जनवरी २००६

मार्गदर्शक :
ठाकुर राम सिंह
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा
प्रो० सतीश चन्द्र
सुश्री चारु मित्तल

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्य:
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपये

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

काल तत्त्व
- महात्मा बुद्ध का युग — ठाकुर रामसिंह — ३

भूगोल परिचय
- पाणिनि कालीन भारत — डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल — ८

जगत विभूति
- ब्रह्मवादिनी गार्गी — डॉ. ओम प्रकाश शर्मा — २१

समर्थ दर्शन
- ग्रन्थराज दास बोध — डॉ. विद्या चन्द ठाकुर — २४

आस्था दीप
- देव कुरुगण नलावण — मास्टर हुकुम चन्द — २७

लोक कथा
- चुहिया बनी बिल्ली की मौसी — दीपक शर्मा — ३२

विविधा
- मुस्लमानों के पुर्खे आर्य थे — बनवारी लाल ऊमर वैश्य — ३६
- विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में शिव भगवत्तत्व — रामशरण युयुत्सु — ४०

सम्पादकीय

धर्मो रक्षति रक्षितः

मार्गशीर्ष *कृष्ण पक्ष चतुर्दशी, कलियुगाब्द 5110 तदनुसार ईस्वी सन् 26 नवम्बर, 2008 को मुम्बई में जो आतंकवाद की विनाश लीला का ताण्डव हुआ, उसकी मार्मिक अनुभूति में ऋषि–महर्षियों का यह संदेश मानव चेतना को झंकृत कर रहा है–*

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

अर्थात् धर्म का परित्याग नाश कर देता है और धर्म का पालन रक्षा करता है।

मानव और जगत कल्याण के निमित्त विज्ञान की व्यापक प्रगति अत्यन्त महान उपलब्धि है, लेकिन धर्म के अभाव में यही उपलब्धियां महाविनाश का कारण बन जाती हैं। विश्व समाज के मन–मस्तिष्क पर आज भी हिरोशिमा और नागासाकी की महाविभीषिका धर्म संस्कारों से हीन विकास का उपहास उड़ा रही है। इन दिनों निरन्तर घटित हो रही आतंकवाद की विश्वव्यापी घिनौनी घटनाओं से भी हम चेत नहीं रहे हैं। एक बन्धुवर्ग धर्मनिरपेक्षता का राग अलाप–अलाप कर धर्म–हीन संस्कार को बढ़ावा दे रहा है। वास्तव में आज आवश्वकता ''सर्वपंथ समभाव'' की है। यह तभी सम्भव है जब धर्म को हम मौलिक अर्थ में ग्रहण करें। धर्म किसी विशेष उपासना पद्धति के साथ बंधा नहीं है। मूलतः जिस तत्त्व मार्ग से लौकिक उन्नति और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति होती है, वह धर्म है–

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसंसिद्धिः स धर्मः।

संसार में पाप का कर्म अधर्म है और पुण्य का आचरण धर्म है। मानव धर्म की यह सर्वोच्च व्याख्या बड़े सरल शब्दों में महर्षि वेदव्यास जी ने दी है कि दूसरों का उपकार करना पुण्य है और दूसरों को पीड़ा पहुंचाना पाप है–

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।

धर्म का यह संस्कार जब जन–जन में व्याप्त होगा तो विश्व परिवार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ध्येय तभी साकार होगा। कालगति को ध्यान में रख कर इतिहास के सत्य को स्वीकार करते हुए अधर्म के उन्मूलन के लिए ***युद्धाय कृतनिश्चयः*** *अर्थात् अधर्म का पूरी शक्ति से प्रतिकार करना, गीता का यह उपदेश धर्म संस्थापना का प्रशस्त मार्ग है।*

विनीत

डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

महात्मा बुद्ध का युग

जन्म-कलियुगाब्द १५१९ (ई०पू० १५८३) मृत्यु कलियुगाब्द १५९९ (ई०पू० १४९३)

● ठा० राम सिंह

इतिहास का लेखन कालक्रम के बिना कठिन ही नहीं अपितु असंभव है। भारत के इतिहास का विषय प्रवर्तन कोई दो चार हजार वर्षों के कालप्रवाह से नहीं, वह हिरण्यगर्भ की संरचना के कालबिंदु से होता है। भारतीय चितंन दर्शन में काल और इतिहास दो नहीं, इनमें बिम्ब—प्रतिबिम्ब भाव है। यदि काल बिम्ब है तो इतिहास उस का प्रतिबिम्ब है। यदि इतिहास बिम्ब है तो काल प्रतिबिम्ब है। जो काल है वही इतिहास है, जो इतिहास है वही काल। यहां भारतीय इतिहास की तत्व दृष्टि और परम्परा दोनों का ही विषय—प्रवर्तन विश्व की संरचना के मूल आधार से होता है।

अत: काल के तत्व की अवधारणा के अनुसार भारत का १९७ करोड़ वर्षों का दीर्घतम इतिहास युगों की वैज्ञानिक हिंदू कालगणना के आधार पर १४ मन्वंतरों में विभक्त है। इनमें से ६ मन्वन्तर पार हो चुके हैं और सातवें वैवस्वत मन्वंतर का १२ करोड़ ५ लाख ३३ हज़ार ३ सौ दसवां वर्ष चल रहा है।

कालतत्त्व और पश्चिम का इतिहास बोध

पाश्चात्य जगत में काल के तत्त्व की अवधारणा पहले से ही अस्पष्ट रही है और अब भी स्पष्ट नहीं है। १४ वीं शताब्दी तक यूरोप को गिनती करनी नहीं आती थी। जब हिन्दू गणित ने यूरोप की यात्रा की तब हिन्दुओं ने यूरोप को गिनती करनी सिखाई। १७ वीं शताब्दी तक वर्तमान क्या है, उसका भूतकाल और भविष्य से क्या संबंध है, इसकी भी जानकारी यूरोप को नहीं थी। जब भारतीय विद्याओं ने यूरोप की विद्यापीठों में प्रवेश किया तब भूत, वर्तमान और भविष्य का अर्थ पाश्चात्यों को समझ में आया।

अत: पाश्चात्य जगत में काल के तत्त्व की अवधारणा स्पष्ट न होने के कारण वहां का इतिहास-बोध बाईबल की धार्मिक अवधारणा कि विश्व की उत्पत्ति ६००० हज़ार वर्ष पूर्व हुई, पर आधरित है। इसी कारण वहां का इतिहास युगात्मक नहीं है।

भारतीय इतिहास का तत्त्वदर्शन काल के तत्त्व पर आधारित होने के कारण यहां का १९७ करोड़ वर्षों का इतिहास काल तत्त्व की, महायुग, मन्वतंर, कल्प और महाकल्प

की वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के अनुसार लिखा गया है।

ज्ञान-विज्ञान के गूढ़ रहस्यों और इतिहास की गुत्थियों को सुलझाने के लिए हमारे ऋषि—मुनियों ने सत्य कथाओं, प्रतीकों और रूपकों का उपयोग किया है। काल के तत्त्व के ज्ञान के अभाव में उनका अर्थ समझना संभव नहीं है। यही कारण है कि यूरोप के इतिहासकार इतिहास लेखन की भारतीय शैली को समझ न सके।

पाश्चात्य इतिहासकारों के भारतीय इतिहास लेखन के प्रयत्न

एशिया और विशेषत: भारत के इतिहास लेखन के लिए अंग्रजों ने दो संस्थाओं का निर्माण किया—रॉयल एशियाटिक सोसायटी लंदन और एशियाटिक सोसायटी कोलकत्ता।

इतिहास लेखनार्थ नवीन ईसाई कालक्रम का अविष्कार

विलियम जोन्स सन् १७७३ में ईस्ट इण्डिया कंपनी का अधिकारी नियुक्त होकर भारत आया। वह इतिहास का विद्वान था। भारत के इतिहास को लिखने के लिए उसने सन् १७८४ में कोलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की। भारत के इतिहास को जानने के लिए उसने अपने निजी सचिव पं० राधाकान्त से संस्कृत सीखी और उसकी सहायता से भागवत पुराण पढ़ा। इतिहास लेखन के लिए कालक्रम आवश्यक है, इस दृष्टि से उसने पहले युगों की हिन्दू कालगणना के कालक्रम को स्वीकार किया परन्तु बाद में इसका परित्याग कर घोषण कर दी कि भारत के इतिहास में केवल सिकंदर के भारत पर आक्रमण करने की तिथि ३२७ ई० पूर्व ही सत्य है। इतिहास लेखन के लिए इसे आधारभूत मान लिया गया। उसने इस नवीन कालक्रम का आविष्कार अठारहवीं शताब्दी के आठवें दशक में किया। यहां से ईसा पूर्व और ईसा बाद का ईसाई विदेशी कालक्रम आरम्भ हुआ। अत: वर्तमान में देश के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह विलियम जोन्स द्वारा अविष्कृत कालक्रम के अनुसार लिखा गया है।

काल निर्धारण

इस नवीन अभारतीय कालक्रम के अनुसार महात्मा बुद्ध के काल को निश्चित करने का प्रयत्न विलियम जोन्स ने शुरु किया। इसके लिए उसे इतिहास के यूनानी दस्तावेजों का अध्ययन करते समय दो नाम मिले-''सैंड्रा कोटस'' और ''पाली बोथा''। सैंड्रा कोटस को उसने राजधानी पाटलीपुत्र मान लिया। इस प्रकार मौर्य वंश जो ईसा पूर्व की सोलहवीं शताब्दी में हुआ उसको ईसा पूर्व की चौथी शती का घोषित कर दिया। मौर्य वंश के राजाओं की तिथियां पुराणों, जैन और बौध साहित्य में मिली। परन्तु

वह तिथि निर्धारण के अपने नवीन कालक्रम के अनुसार उनको व्यवस्थित नहीं कर पाये। लंका में दो ग्रन्थ –'दीपवंश' और 'महावंश' मिले। उनमें लिखा था कि मौर्य वंश के राजा अशोक के राज्याभिषेक २६७ ई०पू० के २१८ वर्ष पूर्व बोधिसत्त्व निर्वाण को प्राप्त हुए। अत: उनके निर्वाण की तिथि २६७+२१८=४८५ ई० पू० है और उनकी आयु ८० वर्ष हुई इसलिए उनका जन्म ४८५+८०=५६५ ई० पू० है। बाद में तिब्बत, चीन, लद्दाख, बर्मा के बौद्ध साहित्य में अन्य तिथियां मिलीं। उनका विचार कर यह तय किया गया कि उनका जन्म ६५३ ई०पू० हुआ और निर्वाण ५४३ ई०पू०। तिथि निर्धारण के इस काल्पनिक जोड़ तोड़ के कररण इतिहासकारों ने अपनी-अपनी कल्पना और मनमाने ढंग से बुद्ध के जन्म की कई तिथियां निर्माण कर डाली। इसके कारण इतिहासकार एक चक्रव्यूह में पड़ गये।

इस नकली आविष्कृत कालक्रम के आधार पर पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारत के इतिहास लेखन के लिए प्राय: ४०० वर्षों तक अपनी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियां लगाकर भरसक प्रयत्न किये परन्तु दु:ख की बात है कि वे लेखन के इस अभियान में पूर्णत: असफल हुये। इसका कारण यह है कि भारत के १९७ करोड़ के इतिहास को उन्होंने ईसाई कालगणना के कालक्रम से जिसका अस्तित्व ही मात्र २००८ वर्षों का है, व्यवस्थित करना चाहा। परंतु यह प्रयास तो बुद्धि के पीछे डंडा लेकर भागने की बात है।

इसलिए तिथि निर्धारणार्थ उपरोक्त भूमिका के रूप में जो तथ्य दिये हैं उनका अध्ययन करना आवश्यक है। हमें यह भी पता होना अति आवश्यक है कि भारत के इतिहास में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना की तिथि दी है और उसका आधार युगों की वैज्ञानिक हिन्दू कालगणना है। उसकी जानकारी के बिना तिथि-निर्धारण असंभव है। इसके अतिरिक्त इतिहास लेखन की हिंदू शैली को भी समझना आवश्यक है।

इसके पूर्व यह प्रमाणित किया जा चुका है कि स्वामी आदिशंकराचार्य कलियुग २०८२ अर्थात् ई०पू० १०१९ में पैदा हुए थे जिसको आज ३०२२ वर्ष का समय होता है। यूरोप के इतिहासकारों के अनुसार गौतम बुद्ध ई० पू० ५५७ में पैदा हुए थे। उनके निर्वाण की तिथि तो एक ही है, परंतु जन्म की तिथियां ३५ के लगभग हैं। श्रीराम साठे ने अपनी पुस्तक "The Birth - Dates of Budha" में इन सब तिथियों की सूची दी है। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि जब बुद्ध पैदा ही नहीं हुए थे और उनके बौद्ध धर्म का अस्तित्व ही नहीं था तो उनके इस धर्म की आलोचना करने के लिए स्वामी शंकराचार्य ४६२ वर्ष पहले ही पैदा हो गये? इसका अर्थ यह है कि यूरोप के इतिहासकारों का बुद्ध

का निर्धारित संवत भी अन्य संवतों के समान पूर्णत: गलत और वास्तविकता के विपक्ष में है।

यूरोप के कई इतिहासकार कहते है कि महात्मा बुद्ध ईसा से ५५० वर्ष पहले हुए। श्री हंटर कहते हैं कि उन्होंने ई० पू० ५४३ में शरीर त्यागा और उनकी आयु ८० वर्ष हुई। इसलिए वह ई०पू० ६२३ में पैदा हुए। लंका के बौद्धों का भी यही मत है परंतु बुद्ध के जन्म का समय जिस जिस ने स्थापित किया है, उसने यही लिखा है कि इसे सही नहीं समझना चाहिये। ऐसी स्थिति में इन कल्पनाओं, अस्पष्ट विचारों और भ्रमों पर आधारित सिद्धान्तों को दृष्टि से बाहर कर, संस्कृत साहित्य का ही अध्ययन कर बुद्ध की जन्म–तिथि निश्चित की जा सकती है।

सारे विद्वान इस बात पर कि कश्मीर के ***महाराजा कनिष्क ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और नियमों के संशोधन और संवर्धन के लिए एक सभा आयोजित की थी।*** उसने १७४९ कलियुग से १८०९ कलियुग तक राज्य किया। यह जानकारी पंडित कल्हण की पुस्तक राजतरंगिणी से प्राप्त होती है। महाराज कनिष्क के बारे में यूरोप के इतिहासकार उलझन में पड़े हुए हैं। कई इसको विक्रमादित्य के बाद बताते हैं। परंतु ***'गुजर देश भूयावली'*** जो एक ऐसे लेखक ने लिखी जिसका कल्हण के साथ कोई संबधं नहीं था। उससे राजतरंगिणी के वृत्त का समर्थन होता है। 'गुजर देश भूयावली' में लिखा है कि कनिष्क ने संवत १८०५ कलियुग में गुजरात, काठियावाड़ को जीता और १८०९ कलियुग अर्थात् कनिष्क की मृत्यु तक यह क्षेत्र उसके साम्राज्य में रहा। इससे ***स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म कलियुग १७४९ अर्थात् ई०पू० १३५२ से बहुत समय पहले हिंदुस्थान में फैल चुका था।***

संवत् १८०९ कलियुग तदानुसार ई० पू० १२९२ में कनिष्क की मृत्यु के बाद उसका बेटा अभिमन्यु कश्मीर के सिंहासन पर बैठा। उसके समय में नाग अर्जुन बौद्ध और चंद्र आचार्य के बड़े शक्तिशाली वाद–विवाद हुए और सिद्ध नाग अर्जुन महात्मा बुद्ध का तेरहवां उत्तराधिकारी था। इससे बुद्ध के समय का अदांजा लगाया जा सकता है।

कल्हण लिखता है कि महाराजा कनिष्क के राज्यकाल में बुद्ध को निर्वाण प्राप्त किये १५० वर्ष बीत चुके थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा बुद्ध ने १७४९–१५०=१५९९ कलियुगी संवत में निर्वाण प्राप्त किया क्योंकि उनकी आयु ८० वर्ष हुई इसलिए १५९९–८०=१५१९ कलियुग में वह पैदा हुए थे। उनकी आयु के ५०वें वर्ष बुद्ध संवत् आरंभ हुआ अर्थात् ई० पू० १५३२, कलियुग संवत् १५६९ में बुद्ध संवत् शुरु हुआ।

राजतरंगिणी के उर्दू के अनुवादक ठाकुर अच्छर चंद लिखते हैं कि लद्दाख के निवासी ९० प्रतिशत से अधिक बौद्ध हैं। वहां एक मंदिर ***समीस का गुफा*** के नाम से प्रसिद्ध है। यह बड़ा पवित्र माना जाता है। वहां प्रत्येक वर्ष मेला लगता है जिसमें चीन, तिब्बत के बौद्ध धर्म के विद्वान एकत्रित होते हैं। सन् १९०५ में वहां के एक पुजारी ने एक पुरानी पोथी पढ़कर सुनाई जिसमें बुद्ध के हालात लिखे थे। इससे यह ज्ञात हुआ कि महात्मा बुद्ध लगभग १६०० ई० पू० में पैदा हुए थे। उस पुजारी ने यह भी बतलाया कि बुद्ध धर्म चीन में १४०० ई०पू० से जारी है। मैंने इस विषय के बारे में उनसे चर्चा की तो पुजारी ने अपने कथन के समर्थन में कई पुस्तकें मेरे सामने रखी। मैंने उन पुस्तकों में महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म के बारे में लिखी बातों को कल्हण और रत्नाकर की पुस्तकों से मिलाया तो मुझे यह स्पष्ट हुआ कि यूरोप के विद्वानों, अनुसंधानों और मतों की अपेक्षा पुजारी का कथन ठीक है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारत के इतिहास के बारे में कल्पनाओं से काम लिया है। अत: कल्पनाओं पर आधारित उनके कथन और निर्णय सत्य दस्तावेजों के सामने कोई महत्त्व नहीं रखते हैं।

अत: उपरोक्त तथ्यों पर आधारित निर्णय के अनुसार महात्मा बुद्ध का जन्म कलियुगाब्द १५१९ (१५८३ ई० पू०) उनकी मृत्यु कलियुगाब्द १५९९ (१६६३ ई० पू०) तथा उनके संवत् का आरंभ कलियुगाब्द १५६९ (१५३२ ई० पू०) में हुआ।

संदर्भ पुस्तकें :

१ तारीख–ए–राजगाने कदीम आर्यवर्त

२ प्राचीन भारत का प्रमाणिक इतिहास

३ विश्व की कालयात्रा

४ भारतीय कालगणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप

५ Birth-Dates of Budha

६ भागवत पुराण

७ भारतीय इतिहास शास्त्र और कालक्रम

✍ भूगोल परिचय

पाणिनिकालीन भूगोल

● **डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल**

अष्टाध्यायी की भौगोलिक सामग्री प्राचीन भारतीय इतिहास के लिये अत्यंत उपयोगी है। पाणिनि ने जिस शब्द-सामग्री का संचय किया उसमें देश, पर्वत, समुद्र, वन, नदी, प्रदेश, नगर, ग्राम—इनसे संबन्धित अनेक नाम और शब्द थे। इस विस्तृत सामग्री का संग्रह सूत्रकार की मौलिक सूझ थी। मध्य एशिया से लेकर कलिंग तक एवं सौवीर (आज काल का सिंध) से लेकर पूर्व में असम (आसाम) प्रांत के सूरमस (वर्तमान सूरमा नदी) प्रदेश तक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्रों के स्थान-नाम अष्टाध्यायी में पाए जाते हैं। इस प्रकार की सामग्री का संकलन निश्चित उद्देश्य और व्यवस्था के आधार पर किया गया है। ***जहाँ एक ओर उससे पाणिनि के व्यापाक ज्ञान और परिश्रम की सूचना मिलती है, वहाँ दूसरी ओर यह भी प्रकट होता है कि जिस भाषा का व्याकरण पाणिनि लिख रहे थे उसके प्रचार का क्षेत्र कितना विस्तृत था। इससे सिद्ध होता है कि जीवन के व्यवहार में देश के चारों कोनों का आपस में घना सम्बन्ध था।***

सिंधु नद के समीप शलातुर ग्राम में जन्म लेनेवाले सूत्रकार को सूरमस, कलिंग, अश्मक, कच्छ, सौवीर—पूर्व से पश्चिम तक बिखरे हुए इन प्रदेशों के विषय में अच्छी जानकारी थी। कहां का शासन एकराज अथवा संघ पद्धति पर था, कहां के नागरिक स्त्री-पुरुषों का देश के अनुसार क्या नाम पड़ता था, इस प्रकार की सूचना आवागमन का घनिष्ठ संबंध हुए बिना संभव नहीं। भारतवर्ष के दूर स्थित भाग व्यापार, राज्य और विद्या संबंध के द्वारा महाजनपद युग में (दशमी शती विक्रम पूर्व से पाँचवी शती विक्रम पूर्व तक) एक दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध में बँध चुके थे। इसका सुप्रमाणित परिचय महाभारत एवं बौद्ध जातक कथाओं से मिलता है। अष्टाध्यायी भी यही सिद्ध करती है। पाणिनि—सूत्रों का अध्ययन इस समय प्राय: सारे देश में किया जाता है। भौगोलिक नाम भी उसी के साथ आते हैं। पाणिनीय छात्रों के लिये किसी समय यह सामग्री मूल्यवान् थी जब वे उन नामों का परिचय जानते थे। पुन: उन अर्थों पर ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे अष्टाध्यायी की सामग्री द्वारा भारत के भौगोलिक परिचय का फल हमें प्राप्त हो सके।

विचार करना चाहिए कि स्थान-नामों के व्याकरण में गृहीत होने का क्या कारण है? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—

व्याकरण का संबंध भाषा से है और भाषा का संबंध स्थान-नामों से। प्रत्येक

भाषा में शब्दों के मुख्यत: दो भाग होते हैं, नाम और आख्यात। आख्यात का संबंध धातुओं से है जिनका संग्रह पाणिनि ने धातुपाठ की १९४४ धातुओं के रूप में किया है। नाम अर्थात् संज्ञाएँ तीन प्रकार की होती हैं—(१) वस्तुओं के नाम, (२) मनुष्य-नाम, (३) स्थान नाम। मनुष्य-नाम और स्थान-नाम भी भाषा के अभिन्न अंग ही हैं। मनुष्य जो भाषा बोलते हैं उसी भाषा के शब्दों से अपने बच्चों के नाम रखते हैं और देश के भिन्न स्थानों का नामकरण करते हैं। स्थान-नामों का अध्ययन भाषाशास्त्र का अभिन्न अंग है। स्थान-नामों की उत्पत्ति में अनेक राजनैतिक, सामाजिक और वैयक्तिक कारण होते हैं। उदाहरण के लिये पंचाल क्षत्रिय जिस भूप्रदेश में पहिले पहिल बसे उस प्रदेश का नाम पंचाल पड़ गया। पंचाल जन का पद अर्थात् निवास स्थान होने के कारण वह प्रदेश पंचाल जनपद कहलाया। पंचाल जन के कारण भूमि का भी पंचाल नाम हुआ। इस प्रकार जन और भूमि को सूचित करनेवाला शब्द मनुष्यों की भाषा का अंग बन गया। व्याकरणशास्त्र को बस इसमें रुचि है कि 'पंचाल जन का निवास स्थान' इस नए अर्थ को किस प्रत्यय की शक्ति से स्थानवाची पंचाल शब्द प्रकट करता है। आजकल की भाषा में बिहारी, बंगाली, मद्रासी, गुजराती, सिंधी, मराठा आदि शब्द भौगोलिक कारणों से बने हैं। 'बिहार का रहनेवाला' इस विशेष अर्थ को बिहारी शब्द का 'ई' प्रत्यय प्रकट करता है। इस छोटे से ई प्रत्यय का उस व्यक्ति के जीवन के लिये विशेष महत्त्व है, क्योंकि इससे उसकी भूमि, भाषा, रहन-सहन, अथवा एक शब्द में कहें तो उसकी नागरिकता पर प्रकाश पड़ता है। व्याकरण की दृष्टि से भाषागत शब्दों का अर्थ सुलझाने के लिये इस प्रकार के स्थान नाम संबंधी प्रत्ययों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। पाणिनि ने अपने समय की भाषा के लिये यह काम बड़ी बारीकी के साथ किया। उनसे पूर्व और उनके पश्चात् मनुष्य नाम और स्थान-नामों के पारस्परिक संबंध का इतना ब्यौरेवार अध्ययन नहीं हुआ। इस दृष्टि से पाणिनीय सामग्री भारतीय इतिहास के लिये अतीव उपयोगी है।

अष्टाध्यायी की भौगोलिक सामग्री का वर्गीकरण कुछ निश्चित नियमों के अनुसार किया गया था, जो इस प्रकार है—

१. स्थान-नामों के अन्त में जुड़नेवाले शब्द, जैसे पुर, नगर, ग्राम आदि।

२. नगर और ग्रामों के अनेक नाम, जो निम्नलिखित चार कारणों से बनते हैं और जिनका निर्देश ४/२/६७ से ४/२/७० तक के सूत्रों में किया गया है—

(अ) ***तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि*** (४/२/६७) अर्थात् अमुक वस्तु जिस स्थान में होती है उस वस्तु के नाम से उस स्थान का नाम पड़ जाता है, जैसे 'उदुंबरा: सन्ति अस्मिन्देशे औदुम्बरा:', अर्थात् उदुंबर के वृक्ष जहाँ हों वह स्थान औदुंबर कहलाया।

(आ) ***तेन निर्वृत्तम्*** (४/२/६८), अर्थात् उसने यह स्थान बसाया। बसानेवाले के नाम से शहर या गाँव का नाम रखना एक स्वाभाविक और पुरानी प्रथा है। कुशांब की

बसाई हुई नगरी कौशांबी कहलाई।

(इ) ***तस्य निवासः*** (४/२/६९), अर्थात् रहने वालों से स्थान का नाम; शिबि जाति के क्षत्रिय जहाँ रहें वह प्रदेश शैब हुआ।

(ई) ***अदूरभवश्च*** (४/२/७०), अर्थात् जो स्थान किसी दूसरे स्थान के निकट बसा हुआ होता है, वह भी उसके नाम से पुकारा जाता है; जैसे वरणा वृक्ष के समीप जो ग्राम बसा हो उसका नाम भी वरण होगा। अथवा विदिशा नदी के समीप बसा हुआ नगर वैदिश हुआ। आम, पीपल, बरगद आदि वृक्षों के समीप बसे हुए हजारों स्थान नाम इसी नियम के अनुसार बने हैं।

ये चारों अर्थ चातुरर्थिक कहलाते हैं और अगले २१ सूत्रों में (४/२/७१ से ९१ तक) इन अर्थों की अनुवृत्ति जाती है। तदनुसार बहुत से स्थान-नामों के उदाहरण अष्टाध्यायी में आ गए हैं। अकेले (४/२/८०) सूत्र के १७ गणों में दो सौ अट्ठाइस स्थानों के नाम हैं।

३. स्थान—नामों के आधार पर दो प्रकार के ऐसे शब्द बनते हैं जो मनुष्य-नामों के आगे जुड़ते हैं। जो व्यक्ति जहाँ रहता है, अथवा उसके पुरखा जहाँ रहते थे, उस स्थान के नाम से उस व्यक्ति के नाम की अल्ल या ख्यात पड़ जाती है। जैसे जयपुर से जिसके पुरखों का निकास हो, अथवा जो स्वयं जयपुर का रहनेवाला हो उसे हिंदी में जयपुरिया कहा जाता है, जो विशेषण के रूप में नाम के आगे जुड़ जाता है। संस्कृत में भी यह प्रथा थी। अपने रहने के स्थान को निवास (४/३/८९) और पुरखों के निकास को अभिजन (४/३/९०) कहते थे। उदाहरण के लिये जो मथुरा का रहनेवाला था, अथवा जिसके पुरखा वहाँ रहे थे, वे दोनों माथुर कहलाए। स्थान-नामों से उत्पन्न अनेक विशेषण उस समय भाषा में प्रचलित थे, जिनकी रूप-सिद्धि के लिये आचार्यों ने नियमों की व्यवस्था की।

४. स्थानवाची संज्ञाओं और वस्तुओं के नामों में और भी अनेक प्रकार के संबंध हो सकते हैं। उदाहरणार्थ जो वस्तु जहाँ से लाई जाती है, उस स्थान से उस वस्तु का नाम पड़ जाता है, जैसे इस समय जापान से आनेवाला माल जापानी कहा जाता है। इसी प्रकार पाणिनि के समय में भी नाम पड़ते थे। काबुल से साठ मील उत्तर—पूर्व में स्थित कपिशा नगरी से आनेवाली दाख 'कापिशायिनी द्राक्षा' और वहाँ का मद्य 'कापिशायनं मधु' कहा जाता था, जिनका नाम पाणिनीय अष्टाध्यायी (४/२/९९) और कौटिलीय अर्थशास्त्र में आया है। रंकु जनपद में उत्पन्न और वहाँ से लाए जानेवाले प्रसिद्ध बैल'रांकव' या रांकवायन' (४/२/१००) कहलाते थे। इस प्रकार के अनेक संबंध जो चातुरर्थिक से भिन्न थे, उन्हें पाणिनि ने 'शेषे' (४/२/९२), इस अधिकार सूत्र के अंतर्गत एकत्र कर दिया है। यह शैषिक अधिकार ५३ सूत्रों में (४/२/१४५) तक चला गया है और इसमें बहुत अधिक भौगोलिक सामग्री आई है।

५. एक प्रकार के भौगोलिक नाम उन प्रदेशों के होते हैं जो किसी जन या कबीले के अधिकार–क्षेत्र में हों और जन के नाम से उनका नाम पड़े। इस प्रकार के भूभाग को 'विषय' कहा जाता था (विषयो देशे ४/२/५२)। काशिका के अनुसार ग्राम–समुदाय की संज्ञा 'विषय' थी। उदाहरण के लिये आप्रीत या आफ्रीदी नामक कबाइली लोग जिस इलाके में रहते थे उस ग्राम-समुदाय या क्षेत्र को आप्रीतक कहा जाता था। राजन्यादि गण (४/२/५३), भौरिकि आदि गण, और ऐषुकारि आदि (४/२/५४) गणों में लगभग पचास से ऊपर के शब्दों का संग्रह पाणिनि ने किया है जिनमें से थोड़े ही नाम अब तक पहचाने जा सके हैं।

पाणिनि ने एकराज जनपद (४/१/१६८-१७६) और संघों के (५/३/११४–११७) नामों का भी विवेचन किया है। एक राजा के अधीन जनपद प्राय: पूर्वी भारत के कुरुक्षेत्र से लेकर के कलिंग और अश्मक तक फैले हुए थे। इनमें कुरु, कोसल, मगध, कलिंग, प्रत्यग्रथ (पंचाल), अश्मक (गोदावरी के किनारे, जिसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी) मुख्य थे। संघ या गण राज्य विशेषकर वाहीक या पंजाब में फैले हुए थे। पाणिनि ने एक राज और संघ इन दोनों प्रकार के भूगोलवाची नामों में जुड़नेवाले प्रत्ययों को 'तद्राज' संज्ञा दी थी (ते तद्राजा:, (४/१/१७४ ञ्यादयस्तद्राजा:, ५/३/११९)

कुछ वन, पर्वत और नदियों के नामों के स्वर को दीर्घ किया जाता था। इनकी गिनती (६/३/११७–१२०) सूत्रों में की गई है। वनों के कुछ नामों में नकार को णकार होता था। उनका परिगणन (८/४/४–५) सूत्रों में किया गया है। कात्यायन और पतंजलि ने इस सामग्री में और वृद्धि की; विशेषत: महाभाष्य में भूगोल संबंधी जानकारी को बहुत आगे बढ़ाया गया है। राजन्यादि गण के वसाति, देवयात, बैल्ववन, अंबरीषपुत्र और आत्मकामेय इन पांच नामों का उल्लेख महाभाष्य (४/२/५२) में ही किया गया है।

भौगोलिक सीमा का विस्तार

सूत्रों में पठित निश्चित स्थान-नामों की सहायता से पाणिनि-कालीन भौगोलिक दिग्विस्तार का परिचय मिलता है। उत्तर पश्चिम में कापिशी (४/२/९९) का उल्लेख है, यह नगरी प्राचीन काल में अति प्रसिद्ध राजधानी थी। काबुल से लगभग ५० मील उत्तर में इसके प्राचीन अवशेष मिले हैं। यहाँ से प्राप्त एक शिलालेख में इसे कपिशा कहा गया है। आजकल इसका नाम बेग्राम है। कापिशी से भी और उत्तर में कंबोज (४/१/१७५) जनपद था जहां इस समय मध्य एशिया का पामीर पठार है। कंबोज के पूर्व में तारिम नदी के समीप 'कूचा' प्रदेश था, जो संभवत: वही है जिसे पाणिनि ने 'कूच-वार' (४/३/९४) कहा है।

तक्षशिला के दक्षिण-पूर्व में मद्र जनपद (४/२/१३१) था जिसकी राजधानी

शाकल (वर्तमान स्यालकोट) थी। मद्र के दक्षिण में उशीनर (४/२/११८) और शिबि जनपद थे। वर्तमान पंजाब का उत्तर–पूर्वी भाग जो चंबा से कांगड़ा तक फैला हुआ है, प्राचीन त्रिगर्त देश था। सतलुज,व्यास और रावी इन तीन नदियों की घाटियों के कारण इसका नाम त्रिगर्त (५/३/११६) पड़ा। दक्षिण-पूर्वी पंजाब में थानेश्वर–कैथल–करनाल–पानीपत का भूभाग भरत जनपद था। इसी का दूसरा नाम प्राच्य भरत (४/२/११३) भी था, क्योंकि यहीं से देश के उदीच्य और प्राच्य इन दो खंडों की सीमाएं बंट जाती थीं। दिल्ली–मेरठ का प्रदेश कुरु जनपद (४/१/१७२) कहलाता था। उसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। अष्टाध्यायी में उसका रूप हास्तिनपुर (४/२/१०१) है। गंगा और रामगंगा के बीच में प्रत्यग्रथ नामक जनपद (४/१/१७१) था, जिसे पंचाल भी कहते थे। मध्यदेश में कोसल (४/१/१७१) और काशि (४/२/११६) जनपदों का नामोल्लेख किया गया है। इससे पूर्व में मगध (४/१/१७०) जनपद था। पूर्वी समुद्र तट पर कलिंग देश था जहाँ इस समय महानदी बहती है। सूत्र ४/१/१७० में पाणिनि ने सूरमस जनपद का नामोल्लेख किया है। इसकी पहचान असम प्रांत की सूरमा नदी की घाटी और गिरि–प्रदेश से की जा सकती है। इस प्रकार पच्छिम में कंबोज (पामीर) से लेकर पूरब में कामरूप असम के छोर तक के फैले हुए जनपदों का ताँता अष्टाध्यायी में पाया जाता है। पश्चिम में समुद्र–तटवर्ती कच्छ जनपद (४/२/१३३) और दक्षिण में गोदावरी–तटवर्ती अश्मक जनपद(४/१/१७३) का नामोल्लेख भी है। अश्मक की राजधानी प्रतिष्ठान थी जो गोदावरी के बाएँ किनारे, बम्बई और हैदराबाद की सीमा पर वर्तमान पैठण है। कलिंग और अश्मक एक ही अक्षांश रेखा पर थे।

उत्तर के पहाड़ों में हिमालय का नाम हिमवत् (४/४/११२) आया है। पाणिनि को भारतीय समुद्रों का भी परिचय था। किनारे के पास के द्वीपों को पाणिनि ने अनुसमुद्र द्वीप (द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ४/३/१०) कहा है। जो वस्तुएँ इन द्वीपों में होती थीं उनके लिये द्वैप्य विशेषण था। बीच समुद्र में स्थित द्वीपों में उत्पन्न वस्तुएँ द्वैप कहलाती थीं। अयनांशों के बीच के देशों के लिये पाणिनि ने अन्तरयन (८/४/२५) शब्द का प्रयोग किया है। कर्क की अयनांश रेखा कच्छ–भुज से आनर्त अवन्ती जनपदों को पार करती हुई सुरमस तक चली गई है। इसके दक्षिण में भारतवर्ष का भूभाग 'अन्तरयन' कहलाता था।

उदीच्य और प्राच्य

पाणिनि ने देश के उदीच्य और प्राच्य इन दो भागों का उल्लेख किया है। इन दोनों के बीच में भरत जनपद था जहाँ इस समय कुरुक्षेत्र है। सूत्र २/४/६६ (बह्वचइञः प्राच्यभरतेषु) के प्राच्य-भरत पद पर पतंजलि ने लिखा है कि वस्तुतः प्राच्य देश भरत जनपद के पूरब में प्रारम्भ होता था। (अन्यत्र प्राग्ग्रहणे भरतग्रहणं न भवति)। पाणिनि ने 'शरावती' नदी का नामोल्लेख (शरादीनां च ६/३/१२०) किया है। नागेश ने एक

प्राचीन श्लोक[1] का प्रमाण देते हुए लिखा है कि शरावती नदी प्राच्य और उदीच्य देशों के बीच की सीमा थी। अमरकोष से ज्ञात होता है कि गुप्त—काल में भी शरावती प्राच्य और उदीच्य के बीच की विभाजक रेखा मानी जाती थी। शरावती के दक्षिण-पूर्व का देश प्राच्य और पश्चिमोत्तर का उदीच्य कहलाता था।[2] शरावती नदी की निश्चित पहचान नहीं हुई। सम्भवत: अम्बाला जिले में बहने वाली घग्घर नदी शरावती कही जाती थी और वही प्राची और उदीची की सीमाओं को अलग करती थी।

पाणिनि की दृष्टि में प्राच्य और उदीच्य दोनों प्रदेशों में बोली जाने वाली भाषा शिष्टसम्मत थी। उसके शब्द व्याकरण का विषय थे। शब्दों के शुद्ध रूप जानने के लिये जिस लोक का प्रमाण दिया जाता था, वह यही था। गन्धार और वाहीक दोनों मिलकर उदीच्य कहलाते थे। सिन्धु से शतद्रु तक का प्रदेश वाहीक था जिसके अन्तर्गत मद्र, उशीनर और त्रिगर्त ये तीन मुख्य भाग थे। तक्षशिला से काबुल तक का प्रदेश गन्धार कहलाता था। पाणिनि की समकालीन संस्कृत भाषा का क्षेत्र गंधार से प्राच्य तक फैला हुआ था। पाणिनि लगभग पाँचवीं शताब्दी विक्रम पूर्व में हुए। उनके बाद लगभग दो शती पीछे यवनों का और फिर शकों का आगमन इस देश में हुआ। शक-यवनों के कारण बाल्हीक और गन्धार के प्रदेश भारतवर्ष की राजनैतिक सीमा से कुछ काल के लिये अलग जा पड़े थे और उनके साथ के सांस्कृतिक सम्बन्ध भी ढीले पड़ने लगे थे। अतएव पतंजलि के महाभाष्य में शक यवनों के प्रदेश को आर्यावर्त की सीमा से बाहर कहा और भाषा-भेद के कारण उन्हें शिष्ट संस्कृत के क्षेत्र से अलग समझा। पतंजलि की दृष्टि में आर्यावर्त के शिष्ट विद्वानों की भाषा प्रतिमानित संस्कृत थी और तत्कालीन संकुचित आर्यावर्त हिमालय के दक्षिण, पारियात्र पर्वत के उत्तर, आदर्श के पूर्व और कालक वन के पश्चिम में अवस्थित था। आदर्श प्राय: अदर्शन या सरस्वती के बालू में खो जाने (विनशन) का प्रदेश समझा जाता है। किंतु काशिका में उसे एक जनपद का नाम कहा गया है (४/२/१२४) और नागेश ने उसे कुरुक्षेत्र की एक पहाड़ी कहा है। कालक वन पाली साहित्य के अनुसार साकेत का एक भाग था। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजतैतिक कारणों से पतंजलि के समय में आर्यावर्त की सीमाएँ काफी सिकुड़ गई थीं। पतंजलि ने शक-यवन, किष्किंध-गब्दिक और शौर्य-कौंच को आर्यावर्त की सीमा के बाहर कहा है। एक कष्किंधा गोरखपुर जिले में था, जिसे पाली साहित्य में खुखुन्दों[3] कहा है। चंबा रियासत के गद्दी प्रदेश का प्राचीन नाम गब्दिक था और वह पतंजलि के समय में आर्यावर्त से बाहर समझा जाता था। किंतु पाणिनि के समय में गंधार से मगध तक भाषा का अखंड क्षेत्र फैला हुआ था। उस समय उसी के प्राच्य और उदीच्य दो स्वाभाविक भाग माने जाते थे।

सूत्रकाल में जनपद भारतीय भूगोल का सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द था। वस्तुत: भारतीय इतिहास में युग-विभाग की दृष्टि से सूत्रकाल का ठीक नामकरण महाजनपद युग

है। इस समय सारा देश जनपदों में बँटा हुआ था। उनकी विस्तृत सूचियाँ भुवनकोश के नाम से लिपिबद्ध कर ली गई थीं, जो महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। पाणिनीय भूगोल का प्रधान अंग जनपद विभाग है। सांस्कृतिक, राजनैतिक, भौगोलिक और भाषा की दृष्टि से प्रत्येक जनपद स्वाभाविक इकाई होता था। यूनानी पुर राज्यों के समान ही और लगभग उसी काल में इस देश में जनपद राज्यों का तांता सारे देश में फैला हुआ था। काशिकाकार ने गाँव के समुदाय को जनपद कहा है-'ग्रामसमुदायो जनपद:' (४/२/१)। यहाँ ग्राम शब्द में नगर का भी अंतर्भाव समझना चाहिए। वस्तुत: जनपद में नगर और गाँव दोनों शामिल थे। जनपदों की राजनीतिक सीमाएँ बदलती रहती थीं, किंतु उनके सांस्कृतिक जीवन का प्रवाह नहीं टूटता था। भाषाओं की इकाई के रूप में कितने ही पुराने जनपद अभी तक बचे रह गए हैं, जैसे पैशाची भाषा का क्षेत्र दरद् जनपद, ब्रजबोली का शूरसेन जनपद, अवधी या कोसली भाषा का कोसल जनपद, मगधी का मगध जनपद।

जनपद की भौगोलिक इकाई के अंतर्गत मनुष्यों के रहने के स्थान नगर और ग्राम कहलाते थे। इनसे भी छोटे स्थानों को घोष (६/२/८५) और खेड़ों को खेट (२/२/१२६) कहा जाता था।

पाणिनि ने कहीं तो ग्राम और नगर में भेद माना है—जैसे प्रचां ग्रामनगराणाम् (७/३/१४) सूत्र में, और कहीं ग्राम शब्द से नगर का भी ग्रहण किया है-जैसे वाहीक ग्राम (४/२/११७), उदीच्यग्राम (४/२/१०९) सूत्रों में। पतंजलि ने कहा है कि कितनी जनसंख्या होने से ग्राम और कितनी जनसंख्या से नगर कहलाते हैं, इस विषय में लोक का प्रमाण मानना चाहिए। वैयाकरण के लिये इसमें हुज्जत करना ठीक नहीं (ननु च भो य एव ग्रामस्तन्नगरम्। कथं ज्ञायते? लोकत:। तत्रातिनिर्बन्धों न लाभ: (७/३/१४)। वस्तुत: स्थिति यह थी कि पूर्वी भारत में गांव बहुत छोटे और नगर बड़े जन-सन्निवेश होते थे, उनका जनसंख्या कृत भेद सच्चा था, इसी से पाणिनि ने भी पूर्व देश में ग्राम और नगर को पृथक् माना। किन्तु वाहीक या पंजाब में ग्राम बहुत समृद्ध जनकेन्द्र थे। यूनानी भूगोल-लेखकों ने लिखा है कि उत्तर-पश्चिम प्रदेश और पंजाब में ५०० ऐसे '' ग्राम '' थे जिनकी आबादी पांच से दस सहस्त्र के लगभग थी। स्वयं पाणिनि की गणसूची से इस बड़ी ग्राम-संख्या का समर्थन होता है। अतएव वाहीक देश में ग्राम और नगर का भेद बोलचाल में न रह गया था, वहां दस-दस सहस्त्र के नगर भी ''ग्राम'' कहलाते थे। यही वस्तु-स्थिति वाहीक ग्राम और उदीच्य ग्राम शब्दों से प्रकट होती है जहां ग्राम शब्द नगर और गांव दोनों का बोध कराता है।

अवश्य ही पाणिनि ने इस प्रदेश की भौगोलिक छानबीन बड़े विस्तार से की थी। इधर—उधर से कुछ मनचाहा बटोर लेने की आकस्मिक शैली से पाणिनीय सामग्री का जन्म नहीं माना जा सकता। उसके पीछे भौगोलिक सामग्री का पुष्कल ब्यौरेवार संग्रह

अवश्य रहा होगा। यही स्वाभाविक पद्धति पाणिनीय सामग्री की ठीक-ठीक व्याख्या करती है। इन स्थानों (गांवों और नगरों) में रहनेवालों के ब्याह-विरादरी, जात-पांत और व्यापारिक लेनदेन के संबंध दूर-दूर तक फैले हुए थे। वे लोग जीवन के विविध क्षेत्रों में एक दूसरे के साथ खूब गुँथ गए थे। स्थान-नामों के आधार पर बने हुए उनके नामों की आवश्यकता भाषा में नित्य पड़ती थी। स्थान—नामों से बने हुए चातुरर्थिक शब्द नित्यप्रति की भाषा के आवश्यक अंग बने हुए थे। पाणिनि ने उसी शब्द-सामग्री का व्यवस्थित सूचीबद्ध संकलन किया था, अन्यथा तद्धित का वह चातुरर्थिक महाप्रकरण बन ही न पाता। उस समय के स्थान-नाम वर्तमान लोकभाषा से बिल्कुल तो मिट न गए होंगे, वे परिवर्तित रूपों में आजकल के स्थान-नामों में बचे पड़े होने चाहिएँ। इसी आधार पर पाणिनीय सामग्री की पहचान आगे बढ़ाई जा सकती है। आचार्य के लिये छोटा या बड़ा कोई भी जनपद व्याकरण की दृष्टि से छोड़ने योग्य न था। यही बात जनपदों में बसी हुई जाति और उपजातियों के विषय में भी ठीक थी। वे जातियां और उनके अल्ल आज भी लोक में और भाषा में हिले-मिले पाए जायेंगे। जातियों, उनके नामों और उनके निकास (अभिजन) और निवास की अनुश्रुति टिकाऊ हुआ करती है।

स्थान-नामों के अंत में आनेवाले शब्द या उत्तरपद

भारतीय स्थान-नामों के अंत में जो शब्द आते हैं उनका भी अच्छा परिचय अष्टाध्यायी से प्राप्त होता है—

(१) नगर (४/२/१४२) —प्राचीन स्थान-नामों के अंत में जुड़ने वाला यह महत्त्वपूर्ण उत्तर पद था जो मध्यकाल और वर्तमान समय में भी प्रयुक्त होता रहा है। पाणिनि के अनुसार प्राच्य और उदीच्य दोनों में नगर का प्रयोग होता था अमहन्नवं नगरेऽनुदीचां (६/२/८९) सूत्र में महानगर और नवनगर इन दो प्राच्य भारतीय नगरों का नाम मिलता है। कास्तीर और अजस्तुंद नाम के नगरों का भी सूत्र में उल्लेख है (३/१/१५१)।

(२) पुर (४/२/१२२) —नगर की भाँति यह भी बहुव्यापी उत्तरपद था। पाणिनि ने सूत्र (६/२/१०१) में हास्तिनपुर, फलकपुर और मार्देयपुर, तथा सूत्र ६/२/१०० में अरिष्टपुर और गौडपुर का उल्लेख किया है। हास्तिनपुर कुरु जनपद की प्रसिद्ध राजधानी थी। फलकपुर संभवत: फिल्लौर (जि० जालंधर) और मार्देयपुर मंडावर (जि० बिजनौर) था। अरिष्टपुर शिबि जनपद में शिबि क्षत्रियों की राजधानी थी (अरिट्ठसाह्व नगर, चरियापिटक १/८/१; शिबि जातक ६/४०१/१२)। गौडपुर गौड देश या बंगाल में था जहां के महानगर और नवनगर का पाणिनि ने उल्लेख किया है।

(३) ग्राम (४/२/१४२)

(४) खेट (६/२/१२६) —हिंदी आदि भाषाओं का 'खेड़ा' इसी से निकला है। मध्यदेश से लेकर पश्चिम में गुजरात तक यह उत्तरपद प्रयुक्त होता है। पाणिनि के अनुसार कुत्सित नगर खेट कहे जाते थे।

(५) घोष (६/२/८४)—अहीर ग्वालों का छोटा गांव घोष कहलाता था।

(६—९) कूल, सूद, स्थल, कर्ष (कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम्, ६/२/१२९) काशिका के अनुसार ये चार उत्तरपद स्थानवाचीनामों में आते थे। कपिस्थल (करनाल जिले में कैथल) अभी तक अपने पुराने नाम से प्रसिद्ध हैं। काबुल (कुभाकूल) और गोमल (गोमतीकूल) नामों में कूल उत्तरपद ज्ञात होता है। स्थान-नामवाची शब्दों के अन्त में सूद का उल्लेख कल्हण ने किया है जहां दामोदर के बसाए स्थान को दामोदर सूद कहा गया है (राजतरंगिणी १/१६७; और भी, सूदे दामोदरीये, १/१५७)।

(१०—११) तीर और रूप्य (४/२/१०६) काशिका में काकतीर, पल्वलतीर और वृकरूप्य, शिवरूप्य नाम मिलते हैं। पाणिनि ने स्वयं कास्तीर एक नगर का नाम दिया है (६/१/१५५), जो पतंजलि के अनुसार वाहीक ग्राम था (४/२/१०४,वा० ३)। पतंजलि ने कखतीर, वायसतीर, चणाररूप्य और माणिरूप्य नाम दिए हैं(४/२/१०४ वा० २)।

(१२) कच्छ (४/२/१२६) कच्छांत नामों का व्यवहार समुद्रतट के रेवाकांठे से सिंध के नदीमुख तक प्रचलित था। काशिका में दारुकच्छ और पिप्पलीकच्छ उदाहरण मिलते हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, दारुकच्छ काठियावाड़ और पिप्पलीकच्छ महीरेवा का कांठा था। ये खंभात की खाड़ी के क्रमशः दाएं-बाएं के प्रदेश थे।

(१३) अग्नि (४/२/१२६)—जैसा कि नाम से प्रकट होता है, जलता हुआ ऊसर (संस्कृत इरिण) प्रदेश अग्नि कहलाता था। काशिका में विभुजाग्नि और कांडाग्नि, ये दो नाम मिलते हैं। विभुजाग्नि कच्छभुज के उत्तर-पश्चिम के बड़े रन का और कांडाग्नि उसके उत्तर-पूर्व के छोटे रन (जहां कांडला है) का नाम था।

(१४) वक्त्र (४/२/१२६) वक्त्रांत नाम के दो उदाहरण काशिका में दिए हैं- सिंधुवक्त्र और इन्द्रवक्त्र। भारतवर्ष के मानचित्र पर ये दोनों प्रदेश स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। सिंध प्रांत का प्रदेश सिंधुवक्त्र और बलोचिस्तान का प्रदेश इन्द्रवक्त्र कहलाता था। सिंधुवक्त्र प्रदेश में खेती सिंध नदी पर निर्भर थी और इन्द्रवक्त्र में वर्षा पर। पहला प्रदेश नदीमातृक था और दूसरा देवमातृक। सभापर्व में इन दोनों प्रदेशों का स्पष्ट वर्णन एक साथ आया है—

इन्द्रकृष्टैर्वर्तयन्ति धान्यैर्ये च नदीमुखैः।
समुद्रनिष्कुटे जाताः पारेसिन्धु च मानवाः।।
ते वैरामाः पारदाश्च आभीराः कितवैः सह।

विविधं बलिमादाय रत्नानि विविधानि च।। (५१/११–१२)
अर्थात् समुद्र की कोख में स्थित उस प्रदेश के लोग जहां नदीमुख से खेती होती थी, विविध भेटें लेकर युधिष्ठिर के यहां उपस्थित हुए। यह सिंध का वर्णन है। उन्हीं के साथ सिंधुपार के लोग भी आए, जहां इन्द्रकृष्ट अर्थात् मेह से खेती होती थी। सिंधुपार के लोगों के वैराम, पारद, आभीर और कितव थे। पूना संस्करण में आभीर के स्थान पर 'बंग' पाठ है जो मकरान के समीप की लंग जाति ज्ञात होती है[५]। वैरामों को यूनानी लेखकों ने रंबक कहा है[६]। पारद (यूनानी पारदीनी) हिंगुल प्रदेश के लोग थे और कितव मकरान की केज जाति थी। इस प्रकार इन्द्रवक्त्र प्रदेश की पहचान बलोचिस्तान के सूखे पथरीले रेगिस्तानी भागों से निश्चित होती है जो आज भी अपनी कृषि के लिये वृष्टि के आसरे रहते हैं।

(१५) गर्त (४/२/१२६) –गर्त उत्तरपद वाले नाम का उदाहरण त्रिगर्त प्रसिद्ध है। काशिका में इस सूत्र पर चक्रगर्त और बहुगर्त, इन भौगोलिक नामों का जोड़ा उदाहरण रूप में दिया है। ये दोनों पुराने नाम जान पड़ते हैं। बहुगर्त संभवत: साबरमती (प्राचीन स्वभ्रमती) के काँठे का नाम था, जिसके नाम का श्वभ्र शब्द गड्ढे का पर्यायवाची है। चक्रगर्त संभवत: प्रभासक्षेत्र में स्थित चक्रतीर्थ की संज्ञा थी। गर्तांत नामों में 'गर्तोत्तर पदाच्छ:' (४/२/१३७) सूत्र पर काशिका में वृकगर्त और श्रृगालगर्त एवं भाष्य में श्वाविद्गर्त नाम भी आए हैं।

(१६) पलद (४/२/१४२)–दाक्षिपलद और माहिकिपलद इसके उदाहरण हैं (काशिका)। अथर्ववेद के अनुसार पलद का अर्थ फूँस या पयार होता था। (अथर्व ९/३/५,७१, पलदान्वसाना) इससे ज्ञात होता है कि सरपत के झुण्डों के लिये पलद शब्द लोक में प्रचलित था और जो गांव उनके पास बसाए जाते थे उनके नाम में पलद उत्तरपद का प्रयोग होता था।

(१७) ह्रद (४/२/१४२)– पानी की नीची दह के पास बसे हुए गावों के नामों में ह्रद जुड़ता था जैसे दाक्षिह्रद।

(१८) वह (४/२/१२२) –वहांत नामों का पाणिनीय उदाहरण 'पीलुवह' है (इको वहेऽपीलो: , ६/३/१२१)। फल्गुनीवह, ऋषीवह, पिंडवह, मुनिवह, दारुवह–ये अन्य नाम काशिका में हैं। फल्गुनीवह आधुनिक फगवाड़े (पंजाब) का नाम प्रतीत होता है।

(१९) प्रस्थ (४/२/१२२; ४/२/११०)–प्रस्थांत नाम कुरुक्षेत्र और कुरुजनपद के प्रदेश की भौगोलिक विशेषता थे। वहां प्रस्थ की जगह पत स्थान नामों के अन्त में पाया जाता है, जैसे पानीपत, बाघपत, सोनीपत, मारीपत, तिलपत। ज्ञात होता है कि प्रस्थान्त नाम मूल में हिमालय के प्रदेश में थे, जहां से आर्यों की किसी शाखा के साथ ये इस प्रदेश में लाए गए। पाणिनि के सूत्रों में कर्कीप्रस्थ और मालाप्रस्थ नाम आए

हैं। (६/८/८७, ६/२/८८) कर्क्यादि गण में मघीप्रस्थ,मकरीप्रस्थ, कर्कन्धुप्रस्थ, शमीप्रस्थ, करीरप्रस्थ, कटुप्रस्थ, कुवलप्रस्थ, बदरप्रस्थ और मलादिगण में शलाप्रस्थ, शोणाप्रस्थ (सोनपत), द्राक्षाप्रस्थ, क्षौमप्रस्थ, कांचीप्रस्थ, एकप्रस्थ, कामप्रस्थ नाम और हैं।

(२०) अर्म (६/२/९०—९१) –विदित होता है किसी समय अर्मान्त नामों का विशेष प्रचार था। बौधायन श्रौतसूत्र के अनुसार ऊजड़ गांव को अर्म कहते थे। (शून्य ग्राम, विनष्ट ग्राम, बौ०श्रौ० ९/१,९/३) सरस्वती के उत्तर में स्थूलार्म नामक एक ह्रद का वर्णन है जहां लंगल में सौ गायों का वंश बढ़ते—बढ़ते एक सहस्र हो गया था। (तांड्य १५/१०/१८) पाणिनि ने सूत्र में इतने अर्मान्त नामों का उल्लेख किया है—भूतार्म, अधिकार्म, संजीवार्म, मद्रार्म, अश्मार्म, कंजलार्म। तैतिरीय ब्राह्मण में भी अर्म शब्द आया है (३/४/१/९)। ऋग्वेद में अर्मक (१/१३३/३) और यजुर्वेद (३०/११) में अर्म खंडहर या ऊजड़ स्थानों के लिये प्रयुक्त हुए हैं। इस प्राचीन शब्द का प्रयोग कालांतर में भाषा से लुप्त हो गया है। हो सकता है यह मूल शब्द म्लेच्छ भाषा का हो। म्लेच्छ (सेमेटिक) परिवार की अर्माइक भाषा में 'अरम' ऊबड़—खाबड़ पथरीले पहाड़ी प्रदेश को कहते हैं। अर्माइक उन लोगों की भाषा थी जो 'अरम' या पर्वतीय प्रदेशों के निवासी थे।

(२१) कंथा- मूल में यह शक भाषा का शब्द था जिसमें कंथ शब्द का अर्थ नगर होता है[७]। शकों का मूल निवास-स्थान शाकद्वीप या मध्य एशिया में था, जहां उनकी शाखा तुषारों और ऋषिकों के साथ अर्जुन का घोर युद्ध हुआ था (सभा पर्व २७ भीष्म०११)। ये मूल शक कुमुद पर्वत(हिरोदोतसके कोमेदई) के आसपास के निवासी थे। पुराणों के अनुसार कुमुद पर्वत मध्यएशिया में सीता नदी (वर्तमान यारकंद) के समीप था। मध्य एशिया में रहते हुए भी शकों का भारतवासियों से प्रथम परिचय हो चुका था। ईसवी पूर्व दूसरी शताब्दी में शक लोग बाल्हीक से शकस्थान (ईरान का पूर्वीभाग) में आकर आबाद हुए और शकस्थान से चलकर ई०पू० प्रथम शती में तक्षशिला, मथुरा और उज्जयिनी में उन्होंने अपने राज्य स्थापित किए। कात्यायन ने शकन्धु और कर्कन्धु शब्दों का उल्लेख किया है (शकन्ध्वादिगण ६/१/९३, वा० ४)। निश्चय ही कात्यायनकालीन शक शकस्थान में आकर बसनेवाले शकों से पूर्वकालीन होने चाहिएँ। जब शक लोग मध्यएशिया के शाकद्वीप में ही बसते थे, तभी ई०पू० चौथी या तीसरी शताब्दी में शकन्धु और कर्कन्धु ये दोनों नाम प्रचलित हो चुके थे। 'शकदेश का कुआँ' और 'कर्कदेश का कुआँ'-ये दो विशेष शब्द हमारी भाषा में दो विशेष प्रकार के कुओं के लिये व्यवहृत हुए। एक प्रकार का कुआं बावड़ी है जिसमें सीढ़ी के द्वारा पानी तक पहुंचते हैं। यह शकन्धु था जिसका प्रचार पच्छिमी भारत में विशेष हुआ। दूसरी तरह के कुएँ रहटवाले थे, जिन्हें आज तक ईरानी ढंग के कुएँ (पर्शियान वैल) कहा जाता है। ये कर्कन्धु थे। कर्क पच्छिमी ईरान में शूषा के पास एक प्रदेश था जिसे अब कर्किआ कहते हैं। शकन्धु और कर्कन्धु ये

दो शब्द कात्यायन के वार्तिक में रहकर साक्षी देते हैं कि पाणिनि-कात्यायन के परिचित शक ई०पू० पहली शती में यहां आनेवाले शकों के पूर्ववर्ती थे। शकों के मूल प्रदेश मध्यएशिया में कंथांत नामों का एक तांता था जो अभी तक रह गया है, जैसे समरकन्द, ताशकन्द, चिमकन्द, पंजकन्द, याकन्द, पायकन्द आदि। वंक्षु (आमू) और सीर नदी के बीच का प्रदेश सुग्द कहलाता था। सुग्दी भाषा में शक भाषा के कन्थ शब्द का रूप कन्द हो जाता है।

पाणिनि का परिचय कन्था शब्द से किस प्रकार हुआ होगा यह ध्यान देने योग्य है। अष्टाध्यायी के निम्नलिखित छह सूत्रों में नगरवाची कंथा शब्द का उल्लेख है—

(१) उशीनर देश में कंथांत स्थान-नाम नपुसकलिंग होता है, जैसे सौशमि कंथम् आह्वरकंथम् (संज्ञायां कन्थोशीनरेषु, २/४/२०)

(२) कुछ अर्थों (शैषिक) में कंथा शब्द में इक् प्रत्यय जुड़ता है, जैसे कांथिक (कन्थाया ष्ठक् ४/२/१०२)।

(३) वर्णुदेश में कंथा शब्द में अक् प्रत्यय लगता है, जैसे कांथक (वर्णौ वुक् ४/२/१०३)।

(४) कंथांतवाची स्थान-नामों में शैषिक अर्थ में छ प्रत्यय लगता है, यदि उस नाम का पहला अक्षर दीर्घ हो, जैसे दाक्षिकंथीय (कन्थ-पलद-नगर-ग्राम-ह्रदोत्तर-पदात् ४/२/१४२)।

(५) कंथांतवाची स्थान-नामों में आदि अक्षर उदात्त होता है, जैसे आह्वरकंथं, चप्यकंथम् (कथा च ६/२/१२४)।

(६) कंथांतवाची स्थान-नाम के पूर्वपद में चिहण हो तो चिहण का पहला स्वर उदात्त होता है जैसे चिहणकन्थम् (आदिश्चिहणादीनाम् ६/२/१२५) चिहणादिगण में अन्य शब्द मडरकन्थ, वैतुलकन्थ, पटत्कंथ, वैडालिकर्णकन्थ, कुक्कुटकन्थ और चित्कणकन्थ है। इनमें से कुछ नाम संस्कृत भाषा में बाहर से आये हुए शब्दों से बने ज्ञात होते हैं।

ऊपर के नियमों से सूचित होता है कि पाणिनि को निश्चित रूप से उशीनर (आधुनिक झङग मघियाना) और वर्णु (आधुनिक बन्नू और बजीरिस्तान का इलाका, गोमल-तोची आदि नदियों की दूनों का भाग) प्रदेशों में कन्थान्त स्थान-नाम मिले। इस प्रदेश में कन्थान्त नामों की संगति के लिये मानना चाहिए कि पाणिनि से भी पूर्व किसी समय शक जाति का प्रसार और सम्पर्क गजनी-कन्धार की अधित्यका से उतरकर तोचीगोमल नदियों के मार्ग से रावी और चनाव के कांठे (उशीनर जनपद) तक पहुँचा था।

सन्दर्भ :

१. प्रागुर्दची विभजते हंसः क्षीरोदके यथा। विदुषां शब्दसिद्धयर्थे सा नःपातु शरावती।। अर्थात् व्याकरण शास्त्र में शब्दों के रूपों का भेद बताने के लिये प्राच्य और उदीच्य का विचार शरावती नदी से किया जाता था।

२. *लोकोऽयं भारतं वर्ष शरावस्यास्तु योऽवधेः।*
देशःप्राग्दक्षिणः प्राच्यः उदीच्यः पश्चिमोत्तरः।।
अमरकोष २/१/६—७)

३. अवध तिरहुत रेलवे के नोनखार स्टेशन से डेढ़ मील पर गोरखपुर जिले में खुखंदों नामक स्थान है।

४. जनपद सूचियाँ— महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय ९; मार्कण्डेय पुराण, अध्याय ५७; वायुपुराण, अध्याय ४५; ब्रह्माण्ड पुराण अ०४९; मत्स्य पुराण अ० ११४; वामन पुराण अ० १३; ब्रह्मपुराण, अ० २७। भीष्म पर्व के जनपद—सूची में लगभग २५० जनपदों के नाम हैं। एक बार प्रारंभ हुई यह परंपरा बाद तक चलती रही।

५. श्यूआन् चुआङ् ने इसका 'लङ् किअलो' लिखा है, जिसकी पहचान कनिंघम ने आधुनिक लाकोरिया या लकूर नामक स्थान से की है। ज्ञात होता है कि आभीराः और बंगाश्च, इन दोनों की जगह प्राचीन पाठ लांगराः था। (कनिंघम प्राचीन भूगोल, पृष्ठ, ३५५—५६)

६. अरियन रंबकौआ (Rambakia) कनिंघम (प्राचीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ३५४) ने इसकी पहचान रामबाग से की है।

७. स्टेनकोनो, खरोष्ठी लेख; पृष्ठ ४३; लंदन की राजकीय एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका, १९३४, पृष्ठ ५१६; तथा शक स्टडीज़ (ओस्लो,१९२९) पृ० ४२, १४९; कंथ नगर।

८. कर्क प्राचीन ईरान की एक जाति थी। शकों के साथ उसका उल्लेख ईरानी सम्राट द्वारा (दारयवहु, सं० धारयद्वसू) के वहिस्तून (मगस्थान) के शिलालेख में आया है।

ब्रह्मवादिनी गार्गी

● डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

ऋषियों ने भारतीय सभ्यता के विकास में कई व्यवस्थाएँ प्रदान की हैं। वस्तुत: आर्य ऋषियों की संतान हैं। सभ्यता के पथ पर आगे बढ़ते हुए ऋषियों ने मूलभूत सिद्धान्त स्थापित किए। इस प्रकार ऋषि परम्पराएँ विकसित होती गईं। वैदिक काल से लेकर पैराणिक युग तक विभिन्न ऋषियों के नाम हमारे समक्ष आते हैं। इस परम्परा में पुरुष ऋषियों के नाम ही अधिक हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि महिला ऋषिकाएँ थी ही नहीं। वाचक्नवी गार्गी उन ऋषिकाओं में से एक हैं। विदुषी गार्गी का नाम समक्ष आते ही हमें वैदिक युग का आदि काल याद आता है।

हमारे इस देश में आदिकाल से बहुत सी ऐसी महिलाएँ विद्यमान थीं, जो अपने किसी न किसी गुण के कारण समाज में प्रतिष्ठित रहीं। भारत देश में नारी को शक्ति का स्वरूप माना गया है। शतरूपा, सवित्री, सती, पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी एवं दुर्गा आदि देवियों का मानव जीवन के विकास के साथ सम्बन्ध है। शिव बिना शक्ति के शव स्वरूप है। शिव शब्द में 'इकार' शक्ति का प्रतीक है। ऋग्वैदिक युग में अदिति, दिति, सीता, उषा, सूर्या, शची, यमी, श्रद्धा, वाक् देवी, इला, भारती, सरण्यू, अरण्यानी, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा, रोमशा, विश्ववारा, सर्पराज्ञी, ममता, उर्वशी, शश्वती, मुद्गलानी, दनु, वृचया, उशिज, विश्वपला तथा सरमा आदि महिलाएँ बौद्धिक गुणों में उत्तम थीं। इनमें कई ऋषिका पद से भी अलंकृत थीं। उपनिषद् काल में सुलभा, कात्यायनी, मैत्रेयी और गार्गी के नाम हमारे समक्ष आते हैं। इनमें गार्गी महान विदुषी थी।

गार्गी के पिता का नाम वचक्नु था। इसी कारण गार्गी का नाम वाचक्नवी भी उपलब्ध होता है। वचक्नु गर्ग गोत्र में उत्पन्न हुए थे। अत: गार्गी नाम उपनिषद् काल तक प्रख्यात हुआ। बृहदारण्यकोपनिषद् में उल्लेख आया है कि एक बार राजा जनक ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। इस यज्ञ में कुरु, पांचाल आदि देशों के विद्वान उपस्थित थे। वहां पर याज्ञवल्क्य के साथ सभी विद्वानों का शास्त्रार्थ हुआ। याज्ञवल्क्य ने सभी विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त कर डाला। इसी अवसर पर वहां ब्रह्मवादिनी गार्गी अथवा वाचक्नवी गार्गी भी विद्यमान थी। वह अपने वैदुष्य के लिए उस समय सर्वत्र विख्यात थी। वह नियमित वेद की पाठी, यज्ञ कर्त्री, उपदेश दात्री तथा ब्रह्म के रहस्यों की ज्ञात्री थी।

परमविदुषी एवं ब्रह्म वादिनी गार्गी ने याज्ञवल्क्य के साथ इस सभा में शास्त्रार्थ प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम गार्गी ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि जो द्युलोक से ऊपर है, जो पृथ्वी से नीचे है और जो द्यावापृथ्वी के मध्य है, वह सब किसमें ओत -प्रोत है: —

सा हो वाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदवाक् पृथिव्या
यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद् भूतं च भवच्च
भविष्यच्चेत्या चक्षते कस्मिंस्तदोतं च प्रोतं चेति!!

बृहदारण्यकोषनिषद् (३.८.३)

इस प्रश्न के उत्तर में याज्ञवलक्य ने गार्गी को समझाते हुए कहा है कि जो द्युलोक से ऊपर, पृथ्वी से नीचे और जो द्युलोक और पृथ्वी के मध्य में है तथा स्वयं भी ये द्युलोक और पृथ्वी है एवं जिन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान नाम से जाना जाता है, वे सब आकाश में ओत-प्रोत हैं–

स होवाच यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदवाक् पृथिव्या
यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद् भूतं च भवच्च
भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाशे तदोतं च प्रोतं चेति!! (३.८.४)

गार्गी को इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर मिलने के उपरान्त, उसने पुन: एक और प्रश्न समक्ष रखा। इस प्रश्न के अन्तर्गत वाचक्न्वी गार्गी ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि आकाश किसमें ओत–प्रोत है?

कस्मिन्नु खल्वकाश ओतश्च प्रोतश्च!! (३.८.६)

इस गंभीर प्रश्न के उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा कि आकाश जिसमें ओत-प्रोत है, उसे तत्त्व ब्रह्मवेत्ता 'अक्षर ब्रह्म कहते हैं। वह न मोटा है, न पतला, न छोटा न बड़ा, न लाल है, न द्रव्य, न छाया है, न तम, न वायु, न आकाश, न संगवान, न रस, न गन्ध है, न नेत्र, न कान है, न वाणी, न तेज है, न प्राण है, न सुख है, न पाप, उसमें न भीतर है न बाहर है, वह कुछ भी नहीं खाता, उसे कोई भी नहीं खा पाता।

अक्षर ब्रह्म की और विस्तृत व्याख्या करते हुए याज्ञवल्क्य ने गार्गी से कहा कि इस अक्षर ब्रह्म के शाश्वत नियम में ही सूर्य एवं चन्द्रमा विशेष रूप से धारण किए हुए स्थित है। यदि अक्षर ब्रह्म के गम्भीर तत्त्वों का विश्लेषण किया जाए तो पता चलता है कि इसी के ही विशेष शासन में निमेष, मुहूर्त, रात–दिन,पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर धारण किए हुए है।

स हो वाचैतद् वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्व्यस्थूलम
नण्व ह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवारय्व
नाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽते
जस्कम प्राणम मुखम मात्रमन्तरमबाह्यं न तदश्नाति
किञ्चन न तदश्नाति कश्चन।। ३.८.८.

इसी ब्रह्म के शासन में नदियाँ तथा हिमालय आदि पर्वत नियमों में बंधे हैं। इसी के शासन में ही मनुष्य दाता की प्रशंसा करता हैं तथा देवगण यजमान का एवं पितृगण दर्वीहोम का अनुवर्तन करते हैं। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जो कोई इस लोक में इस अक्षर ब्रह्म को न जानते हुए तप, यज्ञ अथवा हवन करता है, उसके सब कर्म अन्त वाले होते हैं। यही नहीं अक्षर ब्रह्म स्वयं दृष्टि का विषय नहीं, किन्तु द्रष्टा है। श्रवण का विषय नहीं, श्रोता है। मनन का विषय नहीं अपितु मन्ता है, अज्ञात होते हुए भी दूसरों का ज्ञाता है। इस अक्षर ब्रह्म से भिन्न कोई द्रष्टा, कोई श्रोता, कोई मन्ता नहीं तथा इससे भिन्न कोई विज्ञाता भी नहीं है। इस अक्षर ब्रह्म में ही आकाश ओत–प्रोत है।

गार्गी द्वारा इनते गंभीर प्रश्न उठाने से यह बात स्पष्ट होती है कि वह कोई साधारण स्त्री नहीं अपितु वह एक महान विदुषी थी। उपनिषद् जैसे गूढ़ रहस्यों का इस ऋषिका को पूर्ण परिचय था। औपनिषदिक व्यवस्थाओं की स्थापना में वाचक्न्वी गार्गी ने कात्यायनी और मैत्रेयी ऋषिकाओं के साथ विशेष भूमिका अदा की। अत: भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की पृष्ठभूमि के निर्माण में इस परम विदुषी ऋषिका का विशेष योगदान रहा है।

सन्दर्भ :

१. बृहदारण्यकोपनिषद्;
२. सप्तर्षि–स्मृति–समुच्चय; प्रो०(ज०) प्रभाकर शास्त्री,
रचना प्रकाशनम्, जयपकुरम्, २००५।

प्राध्यापक संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय हमीरपुर

समर्थ दर्शन

ग्रन्थराज दास बोध

● डा० विद्या चन्द ठाकुर

समर्थ गुरु रामदास जी का वर्तमान संवत्सर कलियुगाब्द ५११०, ४००वां जयन्ती संवत्सर है। इनका जन्म महाराष्ट्र के जांब गांव में चार सौ वर्ष पहले चैत्र शुक्ल नवमी को कलियुगाब्द ४७१० तदनुसार विक्रमी संवत् १६६५, शक संवत् १५३० और ईस्वी सन् १६०८ में हुआ था। इन्होंने अध्यात्म मार्ग की गहनता में उतर कर आध्यात्मिक शक्ति के दिव्य प्रकाश से राष्ट्र भक्ति के सशक्त भाव का जन—जन में जागरण किया और '***श्री राम जय राम जय जय राम***' के त्रयोदशाक्षरी संजीवनी महामन्त्र के संकीर्तन के साथ समाज में '***जय जय रघुवीर समर्थ***' का चैतन्य सम्पन्न अतुल महाघोष किया। परिणामस्वरूप हिन्दू समाज जागृत हुआ, संगठित हुआ और इसी संगठित शक्ति के बल पर छत्रपति शिवाजी महाराज ने अत्याचारी आक्रान्ता मुगल शासकों को परास्त कर कलियुगाब्द ४७७६, ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी (ईस्वी सन् ७ जून १६७४) को हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की।

समर्थ गुरु राम दास जी ने अपने जीवन काल में अनेक अध्यात्म, राष्ट्र एवं समाज चिन्तन प्रधान ग्रन्थों की रचना की जिनमें इनका ग्रन्थ दास बोध ग्रन्थराज की विशिष्टता से विभूषित है। महाराष्ट्र में ग्रन्थराज दास बोध को गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस की भान्ति एक सदोपदेशी मार्गदर्शक ग्रन्थ की प्रतिष्ठा प्राप्त है। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के प्रणेता एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रथम प्रचारक स्वर्गीय बाबा साहब आपटे जी ने नागपुर में संघ कार्य के प्रारम्भिक काल में स्वयंसेवकों को कुछ प्रेरक साहित्य उपलब्ध करवाने की आवश्यकता अनुभव की तो उन्होंने दास बोध की एक प्रति प्राप्त करके उसका लेखन आरम्भ किया। वे एक-एक अध्याय हाथ से लिखते थे और उसे स्वयं सेवकों को क्रमिक रूप से पढ़ने के लिए देते थे। इसके अध्ययन से स्वयंसेवकों को संगठन के महत्त्व का ज्ञान हुआ तथा संगठन-कौशल की दिशा प्राप्त हुई। बाबा आपटे जी का यह प्रयास और इसका अनूठा प्रभाव दासबोध की महिमा का स्पष्ट सुप्रमाण है।

ग्रन्थराज दास बोध के बीस खण्ड और प्रत्येक खण्ड के दस अध्याय हैं। खण्ड को इस ग्रन्थ में दशक और अध्याय को समास नाम दिया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में ७७५१ ओवियां हैं। चार चरणों के पद्य को मराठी में ओवी कहते हैं। समर्थ गुरु रामदास ने चार बार दास बोध का संशोधन किया है। आज दास बोध जिस रूप में उपलब्ध है, यह उसका

चौथा और अन्तिम संस्करण है। इस ग्रन्थ के प्रथम संस्करण को जूना (पुराना) दास बोध के नाम से जाना जाता है। इस ग्रन्थ के बीसवें दशक के अन्तिम दसवें समास में ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए समर्थ गुरु जी ने कहा है—

भक्तांचेनी साभिमानें। कृपा केली दाशरथीने।
समर्थ कृपेचीं बचनें। तो हा दासबोध।।
वीस दशक दोनीसें समास। साधकें पाहावें सावकास।
विवरतां विशेषावशेष। कलों लागे।।

अर्थात् भक्त के प्रति प्रेम के कारण प्रभु दाशरथी राम ने कृपा की। उन्हीं की कृपा के सामर्थ्य से यह दास बोध पूर्ण हुआ। इसमें बीस दशक और दो सौ समास हैं। साधक इसका शांत चित्त के साथ धीरे—धीरे अध्ययन करे तो उसका अर्थ अपने आप स्पष्ट होने लगेगा।

यह ग्रन्थ गुरु शिष्य संवाद के रूप में लिखा गया है। ग्रन्थ के आरम्भ में ही श्रोता पूछ रहे हैं कि यह ग्रन्थ कौन है और इसके सुनने से क्या लाभ मिलता है। इस पर समर्थ गुरु रामदास उत्तर में कहते हैं कि यह ग्रन्थ दास बोध है। दास अर्थात् शिष्यों को प्रदान किया गया बोध है। इसमें भक्तिमार्ग का विस्तृत व्याख्यान है:—

श्रोते पुसती कोण ग्रन्थ। काय बोलिलें जी येथ।
श्रवण केलियानें प्राप्त। काय आहै।।
ग्रंथानाम दासबोध। गुरूशिष्यांचा संवाद।
येथ बोलिला विशद। भक्तिमार्ग।।

भक्तिमार्ग के माध्यम से इस ग्रन्थ में सामाजिक, राजनैतिक, लोक—संग्रह की पद्धति तथा व्यवहार शास्त्र जैसे जीवन के सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। समर्थ गुरु जी का समाज को आह्वान है कि अग्नि प्रज्वलित करो, प्रज्वलित होते ही वह दहकती है। इसी प्रकार पहले कार्य आरम्भ कर देना चाहिए। करने से सब कुछ हो जाता है:—

वह्नी तो चेतवाबारे। चेतवित्ताच चेततो।
केल्याने होत आहेरे। आधि केलेचि पाहले।।

दास बोध में कहा गया है कि मनुष्य जीवन का मुख्य कार्य हरि कथा की चर्चा करना है, दूसरा कार्य सापेक्ष चिंतन करना है और तीसरा सभी विषयों पर जागरूक हो कर कल्याणोमुखी कार्य करना है:—

मुख्य हरिकथा निरूपण। दूसरें तें राजकरण।
तिसरें तें सावधपण। सर्व विषई।।

मूर्खों का लक्षण बतलाते हुए एक स्थान पर पढ़त मूर्ख (पढ़े लिखे मूर्ख) पर बात कही गई है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ को देखे बिना जो उसकी नुक्ताचीनी करता है और ग्रन्थ में गुणकारी बातों के होते हुए भी उसमें दोषों को ही ढूंढने का प्रयत्न करता है, ऐसे व्यक्ति को पढ़त मूर्ख समझना चाहिए:—

समूल ग्रन्थ पाहिल्यविण। उगाच ठेवी जो दूषण।
गुण सांगता अवगुण पाहे। तो येक पढ़त मूर्ख।।

ज्ञान अर्जन के लिए अत्युत्तम उपदेश है कि ज्ञान जहां से मिले उसे सुनते रहो। बाद में ज्ञान का सार ग्रहण करो और उस में आई निरर्थक बातें छोड़ दो। यही वास्तविक श्रवण भक्ति है:—

ऐसे हें अवघेंचि ऐकावें। परंतु सार शोधून घ्यावें।
असार तें जाणोनि त्यागावें। या नांव श्रवणभक्ति।।

समर्थ गुरु रामदास जी गृहस्थाश्रम को समाज एवं जीवन का आधार मानते हैं, लेकिन इसमें परमार्थ का मार्ग सदैव ध्यान में रखना चाहिए। उनका कहना है कि मनुष्य परोपकारी होना चाहिए। जो मनुष्य दूसरों को सुख पहुंचाता है, वह स्वयं सुखी होता है और जो दूसरों को दु:ख देता है, उसे स्वयं दु:खी होना पड़ता है:—

म्हणोन दुसन्यास सुखी करावें। तेणे आपण   सुखी व्हावें।
दुसन्यास कष्ट वितां कष्टावें। लागेल स्वयें।।

भक्ति मार्ग का विवेचन करते हुए दास बोध में यह कथन भक्ति की मूल भावना की अभिव्यक्ति है कि मनुष्य अपने मन में जैसा भाव रखता है, वैसा ही फल परमात्मा उसे प्रदान करता है। अन्तर्यामी परमात्मा प्रत्येक प्राणी के भीतरी भावों को भली-भान्ति जानते हैं:-

जैसा भाव जयापासीं। तैसा देव तयासी।
जाणे भाव अंतरसाक्षी। प्राणीमात्राचा।।

इसी प्रकार दास बोध में समर्थ गुरू जी ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष का समाधान सरस, सुबोध, व्यावहारिक शैली में प्रदान किया है। यह मानव-धर्म एवं समाज धर्म की शीर्षस्थानी अनुपम कृति है। इसकी उज्ज्वल प्रासंगिकता सर्वत्र और सदैव है।

शब्द व्युत्पत्तिविद्
भाषा एवं संस्कृति विभाग,
हिमाचल प्रदेश, शिमला—१७१००९

देव कुरुगण की तप:स्थली नलावण

● मास्टर हुक्म चन्द गर्ग

शिमला शहर से पचास किलोमीटर दूर उत्तर दिशा में एक छोटा सा गांव नलावण एक पहाड़ी पर स्थित है। शिमला से राष्ट्रीय उच्चमार्ग से बिलासपुर की ओर आते ही इक्कीस किलोमीटर चलने पर १६ मील स्टेशन आता है। यहाँ से तिब्बत सीमा सुरक्षा मार्ग पर चलते हुए तेरह किलोमीटर चलने पर मान्दरी बस ठहराव है। यहाँ पर तीन दुकानें हैं। राजकीय माध्यमिक पाठशाला मान्दरी से कच्ची सड़क द्वारा तीन किलोमीटर की दूरी पार करने पर नलावण गांव है। पहाड़ी पर स्थित होने के कारण कई बार लोग यहां के लोगों को ढाका पांदे रे बामण (पहाड़ पर रहने वाले ब्राह्मण) भी कहते हैं। गांव में आते ही आप को एक शान्त सुखद अनुभुति का अनुभव होगा। बीस परिवार यहां पर निवास करतें हैं। कुल जनसंख्या ११५ के पास है।

गांव से चहुँ ओर की पहाड़ियां अपने मनोरम दृश्य के साथ अनेक बातों का अहसास करवाती है। उत्तर दिशा में सामने देखने पर जिला मण्डी की करसोग तहसील में देव बाडूबाडे की कोठी दिखाई देती है। इसी धार के चरणों में ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल तत्तापानी है। यहीं से सतलुज नदी बहती है। ऋषि जमदग्नि ने यहीं के जमोगी गांव में तपस्या की थी। नवम्बर से अप्रैल मास तक इसी दिशा में उँची-उँची एवं लम्बी-लम्बी बर्फ से ढकी पहाड़ियों के दर्शन होते रहते हैं। पूर्व दिशा में देवीधार तथा शाली माता का शाली टिब्बा दिखाई देता है। पश्चिम दिशा में सोलन जिले की नरसिंगे री धार है। जो देवता नारसिंह से सम्बन्धित है। आजकल वहां भी मन्दिर बन गया है। दक्षिण दिशा में साथ लगता हुआ गांव झड़ोग की धार और सतोते रा टिब्बा अपने इतिहास को बयां करता हुआ दिखाई देता है। इन पहाड़ियों और टिब्बों के बीच में है नलावण गांव।

नलावण गांव के आसपास के गांवों पर दृष्टि पात किया जाए तो कहीं कोई खास जगंल दिखाई नहीं देता है। परन्तु नलावण गांव की शोभा ही घने बान के जंगल के कारण है। यही गांव की खुशहाली के लिए शीतल वायु, पानी, रसोई के लिए ईंधन, पशुओं को चारागाह देता है। इस जंगल एवं अन्य व्यवस्था का श्रेय यहां के ग्राम देवता देव कुरुगण को जाता है।

राजा देवकुरुगण का इतिहास

शताब्दियों पुरानी बात है। एक राजा कुरु देश से चल कर सिरमौर पहुंचा और वहीं पर राज्य करने लगा। वह कुरु गणों में से था इसलिए कुरुगण कहलाया। कुरुगण का यह चन्द्रवंशी राजा शिव का उपासक था। सिरमौर के ओड़ी गुफा में भी उसने तपस्या की

थी। राजा की मन से किसी शान्त स्थान पर रहने की इच्छा हुई। इसी खोज में वह सिरमौर से शिमला की ओर अपने परिवार तथा कुछ साथियों के साथ चल पड़ा। शिमला उस समय श्यामला गांव था। वहां वह साथियों सहित जाखू टिब्बे में ठहरा। कुछ समय बाद जाखू से वह साथियों सहित नलावण आ गया। नलावण उसे अपने रहने के लिए उपयुक्त लगा। प्राप्त जानकारी के अनुसार ६ बीघे ३ विस्वे में उसने अपनी राजधानी बसायी। कहते हैं कि इससे पूर्व राजा नल भी यहां आ कर ठहरे थे। इसीलिए इस स्थान का नलावण नाम पड़ा। इस स्थान के नामकरण के सम्बन्ध में एक अन्य मान्यता है जो उचित प्रतीत होती है कि इस स्थान पर नोल नामक बांस प्रजाति का वन था। अत: नोल बांस के वन के कारण इस स्थान को नलावण नाम प्राप्त हुआ। राजा कुरुगण प्रतिदिन भौरे के टिब्बे पर ध्यान करने के लिए बैठा करता था। कहते हैं कि जिस पत्थर पर वह तपस्या करने बैठता था वह पत्थर आज भी वहां मौजूद है। यहां सब प्रकार की सुविधा थी। सब प्रकार से अच्छा जीवन चल रहा था। नलावण के सामने दो गांव हीवण और बशैलड़ी पड़ते थे। जो आज भी विद्यमान है। हीवण में जीमींदार तथा बशैलड़ी में ब्राह्मण जाति के लोग रहते थे। इन्हें बशराड़ कहा जाता था। हीवण के जीमींदार लगान के रूप में फसल पर राजा को अनाज भी देते थे। राजा का गांव में भी कभी कभार आना जाना रहता था। इस बात से बशैलड़ी के ब्राह्मण राजा से ईर्ष्या करते थे। साथ में यह भी कहते थे कि यह भौरे के टिब्बे पर से बैठकर हमारी स्त्रियों को देखता रहता है।

एक दिन राजा हीवण गया हुआ था। साथ में राजा का सहायक भौड़ भी था। भौड़ सदा राजा के साथ रहता था। बशैलड़ी वालों ने यह एक उपयुक्त समय समझा और राजा को खत्म करने की योजना बनाई। उन्होंने राजा को यह कहकर बुलाया कि आज हम आप का स्वागत करना चाहते हैं। आप हमारे गांव में पधारिये। राजा को उनकी कुत्सित योजना की जानकारी नहीं थी। न ही ऐसी मानसिकता थी जो उन्हें भय प्रदान करें। वह एक सच्चा शिव भक्त था। उन्होंने क्या योजना बना रखी थी कि लकड़ी के पटड़े के नीचे माह के दाने डाल रखे थे। जैसे ही राजा अपने पांव को इस पटड़े पर रखेगा वैसे ही गिर जाएगा और ऊपर से वार कर दिया जाएगा। वैसा ही हुआ। राजा को उन्होंने मार दिया। सहायक भौड़ बाहर था। जैसे ही उसे इस अप्रत्याशित घटना का पता चला उसने आक्रोश में आकर कई लोगों को मार डाला तथा अनेकों को घायल कर दिया। इस संघर्ष में उसकी अपनी एक आंख भी जाती रही। राजा तो मर चुका था। उसने सोचा कि अब उसे नलावण क्या ले जाना। वह तत्तापानी की ओर रात को राजा का कटा शरीर लेकर अकेला ही चल पड़ा। चलते—चलते वह महशे के टिब्बे पर पहुँचा। वहां उसने राजा के मृत शरीर को नीचे रखा और थोड़ा विश्राम करना चाहा। राजा का मृत शरीर बोल पड़ा मुझे प्यास लगी है। मुझे पानी दो। भौड़ परेशान हो गया। बिना सिर का मृत शरीर कैसे बोल रहा है? परन्तु अकेला था बोला महाराज मैं इस सूखी धार में पानी कहां से दूं? यहां कोई पानी नहीं है। पानी यहां से बहुत दूर है। राजे का शरीर बोला,''यह जो तेरे पास लाठी है इसे जोर से नीचे मार पानी निकल आएगा।'' भौड़ ने ऐसा ही किया। पहली मार में गोमूत्र निकला, दूसरी मार में दूध

की धार निकल आई और तीसरी चोट में पानी निकल आया। महशे रे टिब्बे में आज भी वह पानी विद्यमान है। कहते हैं कि जैसे–जैसे सतलुज के पानी का रंग बदलता है वैसे-वैसे ही इस महशे में निकले पानी का रंग भी बदलता है। राजा ने भौड़ को बोला,"मैं देव कला में आ गया हूँ। तूने जीते जी तो मेरा साथ दिया ही है अपितु मरने पर भी तूने मेरा साथ नहीं छोड़ा। इसलिए जहां मेरी मान्यता होगी वहां तेरी मान्यता भी साथ होगी। तू मेरे द्वारपाल के रूप में माना जाएगा।'' बशैलड़ी के ब्राह्मणों का सर्वनाश होगा और इस गांव में कोई भी ब्राह्मण नहीं बस पाएगा। इधर नलावण में जैसे ही राजा की हत्या का पता रानी को लगा, तो उसने अपने समेत पूरे राज दरबार में आग लगा दी। वह जल कर सती हो गई। राजा ने भौड़ को कहा कि तू मढ़ोड़घाट जा वहां मेरी बहन मनसा रहती है। तू उसे बता कि ऐसे–ऐसे कुरुगण देवकला में आ गया है और रहने के लिए स्थान मांग रहा है। भौड़ वहां से चला जाता है। मढ़ोड़घाट में माता मनसा का द्वार पाल बटुक भैरव था। उसने भौड़ को आते हुए देखा तो उसने उसे जीवित ही पेट में निगल लिया। माता को इस बात का आभास हो गया और बटुक भैरव को पूछा कि वह जो राजदूत आया था वह कहां गया? भैरव ने कहा कि वह तो मैंने जीवित ही खा लिया है। इस पर माता भैरव से कुपित हो गई और कहा कि उसे उगल दे। राजदूत का अपमान नहीं किया जाता, उसका तो सम्मान किया जाता है और आगे से ऐसी हरकत नहीं करना। बटुक भैरव ने भौड़ को उगल कर जीवित बाहर निकाला। माता ने भौड़ को कहा कि तू कुरुगण को बता दे कि शैमल धालू के नीचे मैंने उन्हें जगह दे दी है। वहां मेरी दृष्टि सदा बनी रहती है। यहां पर वास कर ले। भौड़ जब महशे में आया तो देखा की राजा का मृत शरीर तो वहां है ही नहीं।

शिव पिण्डी के रूप में देव कुरुगण का उदय

शैमल धालू में मढ़ोड़ घाट के सभी गांव वालों की गऊएँ घास चरने आया करती थी। शाम को ग्वाला गऊओं को घर ले जाया करता था। अब क्या होने लगा कि कुछ गऊओं ने घर में दूध देना बन्द कर दिया। धीरे–धीरे यह क्रम दूध न देने वाली गऊओं का बढ़ता गया। ग्वाला कुछ नहीं बता पाया। परंतु ग्वाले ने गऊओं को देखना प्रारम्भ किया कि गऊएँ कहां जाती है और क्या करती है। एक दिन ग्वाले ने देखा कि एक पत्थर की पिण्डी के पास गाय खड़ी है और दूध की धार उस पिण्डी पर पड़ रही है। ग्वाले ने अब यह घटना गांव में बताई। दूसरे दिन एक और आदमी कुदाल (खनन यन्त्र) ग्वाले के साथ उस पिण्डी को उखाड़ने के लिए आया। आदमी पिण्डी को जितना उपर निकालता वह उतनी ही नीचे जाती। ऐसा होते रहने से उसे गुस्सा आया और एक कुदाल उस पिण्डी पर मार दी। पिण्डी का एक टुकड़ा टूट कर किनारे में जा गिरा। पिण्डी में से खून बहना शुरू हो गया। वह भय के मारे वहां से भाग गया। थोड़ी ही देर बाद उसी गांव का एक राजपूत वहां से गुजर रहा था। उसे कुछ आवाजे सुनाई दी। वह उस ओर चला गया। तो उसने देखा कि एक पिण्डी से खून का रिसाव हो रहा है। उसने अपनी धोती को उतारा और उस टूटे हुए हिस्से को उस पिण्डी में लगाकर धोती से बांध दिया। अब वह खून बहना बन्द हो गया। आज भी वहां स्थित पिण्डी में एक सफेद पट्टी दीखती है जो उस पगड़ी की पट्टी

मानी जाती है। इसके बाद देव विधान से यह पिण्डी देव कुरुगण के रूप में ज्ञात हुई।

पूजा विधान और पुजारी

शिव पिण्डी के रूप में देव कुरुगण के ज्ञान होने के बाद यहां पूजा होनी शुरू हो गई। देव कुरुगण शिव का अंश होने के कारण अपनी देव कला में आ गया। यहां देवता की पूजा का मास में एक बार संक्रान्ति वाले दिन करने का विधान है। पुजारी के घर में सभी गांव वाले संक्रान्ति के दिन रोट देने के लिए आटा लेकर आते हैं। उसी आटे से देवता के लिए रोट बनता है। रोट के रूप में आया हुआ आटे का अधिकारी पुजारी होता है। पूजा ढोल नगाड़े के साथ की जाती है तथा लोग अपनी पूछ भी देवता से करते है।

देवता की सत्यता और जातर

देवता मानने पर है। नहीं मानो तो कुछ भी नहीं। कहतें हैं कि धीरे–धीरे देव कुरुगण की मान्यता बढ़ने लगी। सुन्नी के राजा दुर्गासिंह के कोई औलाद नहीं थी। वह देवकुरुगण की कोठी में अपनी पुकार लेकर गया। राजा दुर्गासिंह के सन्तान हो गई। राजा ने खुशी होकर देव कुरुगण की कोठी बना दी। साथ में देवता के निशान भी बना दिए। जो मढ़ोड़ की कोठी में आज भी विद्यमान है। राजा ने देव कुरुगण का रथ छत्र भी तैयार किया। देवकुरुगण लोगों की मान्यता पूरी होने पर अपने रथ छत्र के साथ जाता है। रथ छत्र के साथ जाने पर जातर का आयोजन होता है। जिस में आस–पास के गांव के लोग भी देवता का नाच देखने के लिए आते हैं। देवता के साथ आने वालों की सेवा का भार जातर का आयोजन करने वाले पर होता है।

जेठा स्थान नलावण

देव कुरुगण का जेठा स्थान नलावण है। देवकला में वह मढ़ोड़घाट में आया। राजा कुरुगण राजभवन जल जाने के बाद नलावण में सब राख हो गया था। नलावण में वर्तमान में जो ब्राह्मण वंश है वह उसके काफी समय बाद आया। उस के बारे में कहा जाता है कि नलावण से तीन कि०मी० पहले मान्दरी गांव पड़ता है जहां पर राजपूत जाति के लोग रहते थे और अब भी है। वहां पूजा करने के लिए कोई ब्राह्मण नहीं था। घणहाटी के पास शरेर नाम स्थान से मान्दरी के किसी राजपूत ने नलके नीचे नहाते हुए ब्राह्मण के बच्चे को उठा लिया और साथ ले आया। बड़ा होने तक उसे अपने पास ही रखा और बाद में उसे नलावण में बसा दिया। प्राप्त जानकारी के अनुसार वह दासू नाम का पुरुष था जिस का वंश आज भी चल रहा है। दासू की अब तक १०वीं पीढ़ी चल रही है। मान्दरी गांव के देवता की पूजा आज भी नलावण के ही पूजारी करते हैं।

नलावण में प्रमाण

खुदाई करने पर आज भी गांव में जली हुई वस्तुएं मिलती है। हड्डियां, बिना गारे की चिनाई, धान कूटने के उखल(ओखली) आदि अनेक वस्तुएँ मिलती है। दो उखल आज भी वहां पर विद्यमान है। जिन का रंग सफेद है। निकट में कोई ऐसा पत्थर नहीं है जिस के ये बने हो। जिस पत्थर पर राजा भौरे की धार में पूजा करने बैठता था वह पत्थर

भी प्राचीन ही बताया जाता है।

गांव नलावण में भी देवता की पिण्डी उसी तरह की मिली जिस तरह की पिण्डी मढ़ोड़घाट में मिली थी। उस पिण्डी पर भी गऊएँ दूध देती थी। बाद में उस पिण्डी की पूजा होने लगी। जो देव कुरुगण के रूप में भी देव की कोठी में विद्यमान है।

देवता की मान्यता

देव कुरुगण ने एक सामाजिक व्यवस्था दी है जो गांव के लोगों के लिए सर्वमान्य है। गांव के हित में लिए जाने वाले सारे फैसले देव स्थान में ही लिए जाते हैं।

''आवणी''

कुरु देशा रा राजा देवा तू, नलावणे तेरे बेड़े । टेक
चन्द्रवंशी खान दानी तेरी, कुरु देशा का आया।
ओड़ी ढाके तपस्या की, सिरमौरी टिका कहलाया।
गढ़ सिरमौरा रा टीका देवा, नलावणे तेरे बेड़े। नलावणे तेरे...
क्षत्री वंशा रा राजा देवा तू, नलावणे राज सुहाया।
हिवणे बस बशैलड़ी बस नलावणे तेरे बेड़े।
नीला घोड़ा तेरा भौड़ बजीर, भौर तेरा थांव। भौर तेरे...
झैलीरा पाणी भैरे रा ढाक, चन्द्र वंशी क्षत्री तू।
सिरमौरा रा टिका भी तू,गौरी नाथ भी तू, नलावणी नाथ भी तू।
गढ़ सिरमौरा रा टिका देवा, नलावणे तेरे बेड़े।
शलाड़ा बामण वैरी तेरा तू धोके दा हीवणे मारा।
भौड़े पिठी दा चकीरा नियाँ, महशे दा पानी निकाला।
धड़ा पांदे शिर उड़ी रो लागा, महशा नाथ कहलाया।
माता मनसा रा धर्म भाई, देव कला दा आया।
माते मनसे स्थान चुना, शैमवल धालू बताया।
लिंग पत्थरा री बणी, देव कुरुगण कहलाया।
हिवणे बस बशैलड़ी बस, नलावणे तेरे बेड़े।
गढ़ सिरमौर रा टिका देवा, नलावणे तेरे बेड़े।

आवणी में गा कर देव शक्ति का आह्वान होता है। इससे देवता के दीवों या घरिते (चेले) की देह में देव शक्ति प्रविष्ठ होती है और तब उनके मुख में देव वाणी आती है।

देवता कुरुगण के बारे में लिखे इस वृतान्त में अधिकांश जानकारी वही है जो मेरे दादा स्वर्गीय किशनदास ऊर्फ किशनु ने भोजपत्र में लिखी थी। कुछ अन्य जानकारी गांव के वयोवृद्ध व्यक्तियों से श्रोत परम्परा के आधार पर संजोयी है।

गांव नलावण, डा० चलाहल,
जिला शिमला, हि०प्र०

लोककथा

चुहिया बनी बिल्ली की मौसी

● दीपक शर्मा

रामायण और महाभारत की कथाएँ भारत और भारत के बाहर भी जहां हिन्दू संस्कृति का गहरा प्रभाव है, में जन-जन में प्रचलित हैं। ये कथाएँ ग्रन्थों के अतिरिक्त समाज में मौखिक लोकश्रुति परम्परा में भी कही-सुनी जाती हैं। इन लोक कथाओं में स्थानीय परिवेश और मान्यताओं का चित्रण विद्यमान रहता है। एक ऐसी ही कथा हिमाचल प्रदेश की सतलुज घाटी के निरमण्ड क्षेत्र में पायी जाती है जिसके अनुसार एक चुहिया एक बिल्ली की मौसी बन जाती है।

द्वापर युग के महाभारत काल की बात है। पाण्डवों को बनवास मिला था और वे जंगल—जंगल घूम रहे थे। एक बार वे सतलुज घाटी के किसी जंगल में डेरा डाले हुए थे। उन्हीं दिनों समीप के किसी दूसरे जंगल में भीषण आग लग गई। उस जंगल में एक चुहिया ने बच्चे दिये हुए थे। चुहिया उस समय अपने बच्चों को दाना पानी की खोज में कहीं बाहर गई थी। संयोग से माँ कुंती उधर से गुज़र रही थी जहां चुहिया के बच्चे बिलख रहे थे। माँ की ममता चाहे मानव हो या कोई अन्य जीव। माँ कुन्ती से उन मुँशटु (चूहे) के बच्चों की, यह दुर्दशा देखी नहीं गई। आग की लपटें धीरे—धीरे उन बच्चों तक बढ़ रही थी। कुंती माई ने उन बच्चों को अपनी साड़ी के पल्लू में बांधकर सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया। कुछ समय के बाद जब बच्चों की माँ चुहिया अपने घर की ओर आ रही थी तो देखती है, सब कुछ जलकर राख हो गया था। चुहिया छाती पीट—पीट कर रोने लगी। चुहिया की खबर मिलते ही कुंती चुहिया के पास गई और कहने लगी ''चुहिया ! रो मत। मैंने तेरे बच्चों को मरने से बचा लिया है।'' चुहिया सिसकते हुए कहने लगी, ''हे बड़ी बहन कुंती! आज से तू मेरी सत धर्म की बहन हुई। हे बहन! भगवान न करे, यदि कभी तुम पर संकट आए तो मुझ छोटी सी चुहिया बहन को याद करना।'' उधर दूसरी ओर क्या होता है—

पांज़े भाई पांडवे वौणे नाहै वासे,
वेशी गैए ढुंड डवारै।
कौरू ए चीणों कोट तेत नैही तीरै द्वारै।
गारोष्टुए लाए ज़ानी मोड़ाचू, सांकरे लाई गार।
छिछड़िए पाए तोडू मांदरू, चीला ज़ौ गाणिए दार।

अर्थात् पाण्डवों को बनवास हो गया गया। वे वन में ढुंडू नामक डवार (बडी चट्टानों के नीचे गुफानुमा शरण-स्थल) में डेरा लगाए बैठ गए। पाण्डवों को बनवास होकर काफी समय हो गया। कौरवों के मन में पाप बस गया कि क्यों न पाण्डवों को मार दिया जाए। कौरवों ने षडयन्त्र रचा। उन्होंने उनको मारने के लिए कोठी(भवन) का निर्माण शुरू किया। यह एक ऐसी कोठी थी जिसमें न तो खिड़कियां थी और न ही दरवाजे। पत्थर के स्थान पर दीवारें सूखे हुए गोवर के उपलों की चिनवाई की। मिट्टी के स्थान पर पलस्तर लाख (विरोजा) का लगाया। छिछड़ी (ज्वलनशील झाड़ी) के शहतीर तथा चील की लकड़ी के दार (दीवार आदि में लगाए जाने वाले शहतीर–नुमा लम्बी लकड़ी के उपकरण) डाले गए। पूरे महल में प्रवेश के लिए केवल एक छोटा सा द्वार बनाया गया था।

सौरगा हेरा तैबे डांडौ विष्णु भगवान,
कौंरूए तीना पांडवै लै काच हेरौ कौरी।
आइआ बेशौ सौ नु डांडौ बांउएं कनारै,
बांवी बेशौ तैआ भीती गाही डांडौ विष्णु नरैणा।

स्वर्ग लोक से विष्णु भगवान सब कुछ देख रहे हैं। वह सोच में डूबे हैं कि कौरवों ने पाण्डवों को मरवाने के लिए चाल चल दी है। जब कोठी बन रही थी तो विष्णु भगवान उस निर्माणाधीन कोठी की बाईं दीवार पर आकर बैठ गये।

शूणां शूंणा तौमैं मेरे ओ खीरीदरखणो,
राच पराज़ड़ी गौ मेरेओ शाठा कौंरू का मांगो।
काना खोलिआ कुण्डड़ा तौमा लै मूं पोरू देंउ गो।
बाही खोलिआ ढांगलू शाठा कौंरू मांगो।
वांऊए तेऊ कनारै का डाहो सुरमा देईं।।

दीवार पर बैठकर विष्णु भगवान मिस्त्रियों से कहते हैं, ''हे मेरे मिस्त्रियो! तुम सब मेरी बात ध्यान से सुनो। तुम्हें रात को भी काम करना होगा। रात की मज़दूरी तुम्हें मैं दूंगा। मैं कान के कुण्डल तक आप को दे दूंगा। बाजू के कंगन व दिन की मज़दूरी कौरवों से लेना। तुम्हें रात को एक काम करना होगा। कोठी की धरातल मंजिल में बाईं ओर को भूमि के नीचे से एक गुप्त सुरंग बनाना।'' विष्णु के कहने पर मज़दूर सुरंग निकालने लगे। सुरंग निकालते समय कुछ दूरी पर एक बड़ा पत्थर अटक गया। अत: सुरंग अधूरी ही बन पाई।

छांदै छाडौ लादो तारा जोधो राणों,
चाला भाई ओ म्हारै घरासणी हौंणी।

कोठी बनकर तैयार हो गई। कौरवों ने दुर्योधन को पाण्डवों के पास ढुंडू डवार भेजा। दुर्योधन पाण्डवों से कहता है कि चलो भाइयो हमने नया मकान बनाया है, जिसकी गृहासणी (गृह प्रवेश) आपके द्वारा होगी।

बैणे बोला हौरी कुंता माई,
शूणा-शूणा मेरे ओ तौमें नाहदै न लागो।
बैरिए खाणे कौंरू हामा ज़िउणै ना दैआ,
एक ना धिज़णें मेरेओ दुबड़ै बादू।

माँ कुंती अपने पुत्रों से कहती है, '' हे मेरे पुत्रो! तुम मेरी बात सुनो। कौरवों के बहकावे में मत आओ। यह दुश्मन हमें जीने नहीं देंगें। बैरी यदि कमज़ोर भी हो उसे कभी कमज़ोर मत समझो।''

बैणे बोला हौरी भीम सैणा, बैरिए ईना बौसता हारै खाई आहणी।

परन्तु भीमसेन हठ करता है कि हमने इन शत्रुओं के घर जाकर खा पीकर आना है।

पांज़ै पाडवै आए कौरूए बाड़े,
भीतरी बशैए ज़ौहरा दि ए भाई पाँडवे।
बाहरा का तीनो कौरूए आगा हेरी लाई।

पांचो भाई कौरवों के घर गए। पाण्डवों को नई कोठी में भीतर बिठा दिया तथा बाहर से कौरवों ने आग लगा दी। कानो कान चुहिया को भी पता चला कि पाण्डवों को मारने का षडयन्त्र चल रहा है। ज्यों ही कोठी में आग लगी चुहिया भी पहुंच गई। कुंती चुहिया से कहती है कि–

एती का पोरू औहकी मुशड़िए मुल्है कौदू न हौणी।

हे बहन चुहिया! इससे बड़ी मुसीबत मुझे कभी नहीं होगी। चुहिया ने अपनी सारी मूषक(चूहा) सेना को साथ लाई थी। हज़ारों चूहे बाहर से कोठी के लिए सुरंग खोदने लगे तथा वहां पहुंचे जहां वह बड़ी चट्टान अटकी हुई थी। उस चट्टान से भी सुरंग बना दी और उस सुरंग के रास्ते से पाण्डव बाहर निकले। जब वे बाहर निकल रहे थे तो उन्हें एक कुतिया मिली। वे उससे पूछने लगे–

काडू बोला कुकरिए तू कीदा लै चाली।

कुतिया बोली–

शाठा कौंरू ए ज़ाड़ै पांज़ पाण्डवै ज़ौहरा दी।
मूं चाली तीदा लै तीने हाडकै खांदी।

'' हे काली कुतिया! तू कहां जा रही है? कुतिया कहती है कि साठ कौरवों ने

पांच पाण्डवों को कोठी में जला दिया है। मैं वहां उनकी हडियां खाने जा रही हूँ।

हेसी बोलू ढोलिओ तौमें कीदा लै चालै।
पांज पांडवे ज़ौड़ै ज़ौहरा दी, हामें बधाउणे बाज़दै चोलै।

आगे चलकर उन्हे ढोल और शहनाई बजाने वाले मिले। पांडव उनसे पूछते हैं कि तुम कहां चले? वे कहने लगे कि पांच पांडव कोठी के भीतर जल गए। हम बधाई बजाने जा रहे हैं।

कुछ दूरी पर पांडवों को सजधज कर आ रही कोई युवती नज़र आई। वह युवती नहीं बल्कि घाघरा और ओढ़नी पहने लौछू नाम की बिल्ली थी। उसने अपने कान में पानी डाल रखा था। पांडव उसे देखकर आपस में बातचीत कर रहे थे—

पारा ओरू नोखी छेउड़ी आई गो भाइयो।
घुंड़ुआ ज़ै घाघारु पाई लो भाई जो ज़ाणी कीदा लै चाली।

हे! भाइयो यह सामने से चुन्नी और घाघरा ओढ़ कर के अनोखी औरत कौन आ रही है? और कहां जा रही है?

बैणे लोग पूछदे तु गै दाइए कीदा लै चाली।
बैणे बोला लौछुए बरैई पांजा पाडवे ज़ौड़े जौहरा दी।
जुण मेरे कानो पाणी हौआ एथा कै मूं आणू शेनी आग।

पाण्डव उससे पूछते हैं, ''बहन! तू कहां जा रही है?'' बिल्ली कहती है कि पाण्डवों को कोठी के भीतर ही जला दिया है, उस आग को बुझाने के लिए मैंने अपने कान में पानी लाया है। हो सकता है कि पाण्डव बच जाए। बिल्ली ने पूरे आत्मविश्वास व श्रद्धा से यह कहा।

तूता गै लौछुए दाइए म्हारे साता हौंदी धौरमअ बैहणा।

पांडवों ने बिल्ली से कहा, ''हे लौछू! हम पाण्डव सभी जीवित बच कर बाहर निकल गए हैं। तूने हमारे प्रति जो प्यार और श्रद्धा दिखाई इस का एहसान हम चुका नहीं सकते हैं। हम तेरे को आज से सतधर्म की बहन मानते हैं। इन घटनाओं से कौरवों के खोट और कपट के भेद खुल गए और पांडव सुरक्षित बच गए। इस कथा में इस प्रकार माता कुंती की बहन चुहिया, पाण्डवों की बहन लौछू बिल्ली की मौसी बन गई है।

गांव निरमण्ड,
जिला कुल्लू,
हिमाचल प्रदेश

विविधा

मुसलमानों के पुरखे थे आर्य

● बनवारी लाल ऊमर वैश्य

इस देश को जम्बूद्वीप भरतखण्ड आर्यावर्त के नाम से जाना जाता है। आज भी हिन्दू पूजा–अनुष्ठान के समय संकल्प लेते हैं-***जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते।*** कभी ***कृणवन्तो विश्वार्यम*** का उदघोष था। रामायण और महाभारत में आर्येतर जातियों का उल्लेख है। पुराणों में आर्य धर्म से अलग कुछ ऐसी जातियों का उल्लेख है जो देश के पश्चिमी भूभागों में जा बसी थीं। शक बर्बर जाति थी जो बल्ख में रहती थी। यह शक जाति, पादर और पहलव जाति से युद्ध कर ईरान में जा बसी थी। पारद, पहलव और पार्शियन, फारस की आर्य जातियां रही हैं। ईरान आर्याण था। एरियाना आर्य प्रदेश था। वहां के लोग देश, काल, वातावरण के कारण इस्लाम के प्रभाव में आकर मुसलमान हो गए थे, किन्तु उनके पुरखे आर्य थे।

अरब

बौद्ध साहित्य में वनायु देश का नाम आया है, जो आज का अरब है। रामायण काल में मरुकान्तार देश का उदय हुआ था जहां राम के बाण ने सेतुबन्ध के समय उथल-पुथल मचाई थी। बाण की आण्विक क्षमता से धरती से कई उत्स्रवित कूप फूट पड़े थे जिससे इस मरु में हरे-भरे वन उग आए थे। रामायण में उसे मरुकान्तार कहा गया है। इस्लाम पूर्व अरब में बौद्ध धर्म था क्योंकि वनायु में बौद्ध संगति हुई थी। मुहम्मद साहब ने अरब स्थित जिस हीरा पर्वत की गुफा में बैठकर तप किया था, वैसे बौध संन्यासी भी किया करते थे। स्वयं भगवान बुद्ध ने गया में पीपल वृक्ष के नीचे ध्यान योग किया था। जिससे उन्हें आत्मबोध हुआ था और तब वे बुद्ध कहलाए।

अरब को संस्कृत में अर्वन कहते हैं जिसका अर्थ होता है घोड़ा। अरबी घोड़े विश्व में चर्चित हैं। शुक्राचार्य ने इस मरुकान्तार में शैव मत का प्रचार किया था। वे कवि कहलाए और अरबी में काबा हो गया। काबा तीर्थ इस्लाम मत का एक पवित्र स्थल है जहां मुसलमान हज करने जाते हैं। ***हज का अर्थ होता है मुण्डन। इसी शब्द से हजामत शब्द बना है। तीर्थों में आकर मुण्डन कराना यह आर्य परम्परा का सूचक है।*** हिन्दू तीर्थों में जाकर मुण्डन कराते हैं। मक्का में खूब हजामत संस्कार होता है। अरब और भारत में

सांस्कृतिक सम्बंध थे। भारतीय व्यापारी जब अरब में अस्थायी प्रवास करते थे तब वे वहां श्रीमद्भागवत की कथा सुनाते थे जिसके प्रभाव में दो अरबी बालाएं श्रीकृष्ण की नगरी मथुरा आई थी और कृष्णचन्द्र के दर्शन के लिए वृन्दावन में भटक रही थीं। एक अरबी कविता में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की चर्चा है। मक्का के कर्मकाण्डी मग ब्राह्मण होते थे। इन्हें हुसैनी ब्राह्मण भी कहा जाता है। ईरानी भाषा में मग को तीर्थ पुरोहित कहा जाता है। शेख अरब के शीर्ष होते थे जैसे हिन्दुओं में शीर्ष ब्राह्मण होते हैं। शीर्ष ही शेख है। शेख ही धर्माधिकारी होते हैं। मुहम्मद साहब शीर्ष थे। उनके वंशधर शेख कहलाए। कूर्मपुराण में मग का उल्लेख है जो मक्का से गया है और मन्दक मदीना 'मग मन्दग...'

तुर्किस्तान

अरब के निवासी नक्षत्र पूजा करते थे। चांद—सितारे उनकी संस्कृति के अंग थे। उनके ध्वज पर चांद—सितारे होते थे। उनकी नारियां सितारे युक्त परिधान धारण करती थीं। नक्षत्र पूजा की प्रेरणा अरबियों ने तुर्कों से ली थी। क्योंकि तुर्कों ने ही सर्वप्रथम नक्षत्र का शुभाम्भ किया था। कभी इराक नक्षत्र पूजक था वहां चांद मन्दिर था। इस्लामी देशों में चान्द्र वर्ष और भारत में सौर वर्ष है।

चन्द्रवंशी राजा ययाति की दो रानियां थीं। देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानी शुक्राचार्य और शर्मिष्ठा वृषपर्वा की बेटियां थीं। देवयानी ने यदु और तुर्वसु को और शर्मिष्ठा ने द्रह्यु, अनु और पुरु को जन्म दिया था। ययाति ने दक्षिण और पूर्व भाग में तुर्वसु को राजा बनाया जो तुरुष्क कहलाए, आज तुर्क कहे जाते हैं। तुरुष्क अपने चान्द्र पुरखों को भूल नहीं पाए। वे उनकी स्मृति में शुभ चन्द्र पर्व मनाने लगे जो ईद के रूप में प्रचलित हुआ। इन राजाओं के ध्वज पर चांद सितारे उभर कर आए। श्रीकृष्ण ने गीता में विराट दर्शन के समय अर्जुन से कहा था 'मैं सितारों में चांद हूँ।'(नक्षत्राणां अहम् शशी)। चन्द्रमा के पुत्र बुध हुए जो हरे रंग के हैं। इस्लामी देशों में हरे रंग का महत्व बढ़ा जो हरियाली और मंगल का सूचक है। शान्ति के पैगाम को याद दिलाने के लिए प्रत्येक शुभदर्शन हेतु ईद आती है। वह ईद आर्य पुरखों की याद दिलाती है।

ईरान

महाभारत काल में ईरान आर्याण था, जहां राजा शाल्व राज करते थे। वे महाभारत युद्ध में आए थे। उस भूभाग के अनेक राजाओं ने महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भाग लिया था। ईरान के राजाओं की उपाधि आर्य मिहिर थी। ईरानी भाषा में आर्य भाषा के शब्दों की भरमार है। मित्र (सूर्य) मिथ्र और अग्नि आतर है। यम को यिम कहा जाता है और इन्द्र को बरथ्रहन जो वृत्रासुरन्ध का अपभ्रंश है। इस्लाम की आंधी में वे भले

ही मुसलमासन बन गए हों परन्तु मूलत: वे आर्यों के वंशधर हैं। वे सोम यानी होम की पूजा करते हैं। इरानियों का विशिष्ट आर्य सौन्दर्य है। ईरान की धरती पर सौन्दर्य की देवी अप्सराओं का गांव था, जिसे पैरिक कहते हैं। परी पैरिक से निष्पन्न है। ज्ञानथैयति एक देव परी थी। गान्धार जातियां इसी क्षेत्र में रहती थीं, जिनकी संगीत स्वर लहरियों से ईरान की उपत्यकाएं गूंजा करती थीं। काम गोत्रजा कामायनी इसी गान्धार की बेटी थी, जो नीले रोम वाली भेड़ों के ऊन से बने पारदर्शी परिधान पहना करती थी। ऋषि जटथ्रुस्त्र ईरान के थे जो आर्यों की तरह अग्नि के उपासक थे। अहुर मज्द इस देश के देवता थे। पूर्व ईरान पारसिक, पह्लव, पारद आदि आर्य शाखाओं के केन्द्र थे इनकी वेशभूषा और वस्त्र—सलवार, पायजामा आदि आधुनिक मुसलमानों के पहनावे हो गए हैं।

अफगानिस्तान

महाभारत काल में जो चन्द्रवंशी पश्चिमी भू—भाग में बस गए थे, कालान्तर में वे अपगण कहलाए। अपगण का विकृत रूप अफगान हुआ और देश का नाम अफगानिस्तान हुआ। इसी देश में गान्धार था जो अब कान्धार है। गान्धारी गान्धार नरेश सुबल की राजकुमारी थी। जब अर्जुन इस देश में राजसूय यज्ञ की यात्रा में आए थे तब मातामही गान्धारी की जन्मभूमि होने के कारण उन्होंने धूलि वन्दन किया था। इसी देश में गज प्रदेश था जो गजनी हो गया। कुभा प्रदेश आधुनिक काबुल है। काबुल नदी कुभा है। बौद्ध काल में यहां विहार थे और पर्वत की गुफाओं में भगवान बुद्ध की प्रतिमाएं थीं। जब अरबी लोग इस्लाम मत के प्रचार में यहां आए तब अधिकांश बौद्ध तलवार से मार डाले गए थे और शेष ने इस्लाम कबूल कर लिया था। इन अफगानों ने भारत पर आक्रमण कर इस देश की संस्कृति को मिटा देने का असफल प्रयास किया था। काश! ये अफगाान आर्य ही बने रहे होते। अफगानिस्तान अपगण ही रहता। मतान्तरण की तलवार के नीचे यह आर्य अपगण जाति मुसलमान बनी, पाणिनि का जन्म अफगानिस्तान में हुआ था। उन्होंने जिस अफरीदी जाति का उल्लेख किया है, वह मूलत: आप्रीति है।

बलूचिस्तान

महाभारत काल में शक्तिपीठ हिंगुला देवी के सुदूर परिक्षेत्र में जो आर्य जातियाँ रहती थीं, वे बलूच कहलाती थीं। वीर विक्रम और बलशाली होने के कारण वे बलोच कहलाते थे। इनके पुरखों ने महाभारत युद्ध में भाग लिया था। ये युद्ध प्रिय होते हैं। आज भी ये अपनी अस्मिता और अतीत के प्रति जागरूक हैं। ये बलूच आर्य मतान्तरित मुसलमान हैं जो अपने अतीत पर आंसू बहा रहे हैं।

पख्तूतिस्तान

सप्त सैन्धव से लेकर सीमान्त प्रदेश तक के भूभाग पर ऋग्वैदिक राजा पख्त का शासन था। राजा पख्त गोवंश की रक्षा के लिए कृत संकल्प थे। उनके राज्य में दूध-दही की नदियाँ बहती थीं। पख्त भू—भाग पर निवास करने वाली जातियां पख्त कहलाईं। पख्त पख्तू हो गया और देश पख्तूनिस्तान कहलाया। सीमान्त गांधी अब्दुल गफ्फार अपने को आर्य कहते थे। उन्होंने कहा था 'हमारे पुरखे आर्य थे'। पख्तूनिस्तान की भाषा पश्तो है जिसमें आर्य भाषा की शब्दावली पाई जाती है। पश्तो का खुखुर शब्द संस्कृत श्वसुर का अपभ्रंश है।

मंगोलिया

मनुस्मृति में वर्णित दरद, खस आदि पर्वतीय जातियां हैं जो चीन, कोरिया और मंगोलिया तक फैली हुई हैं। बौद्ध धर्म का प्रचार इन देशों में खूब हुआ। चंगेज खां आकाश की पूजा करता था मंगोलिया बौद्ध से मुसलमान हो गया। अनेक मुगलों ने हिन्दुस्थान पर राज किया था। कभी मंगोलिया मौद्गलिक था। वहां बौद्ध संगति हुई थी। देश—काल—वातावरण के चलते वे इस्लाम के अनुयायी हो गए। पूर्व इस्लाम युग में मूलत: बौद्ध थे। उन्हें 'बुद्धं शरणं गच्छामि' चाहिए तथा 'बुद्धं संघं गच्छामि' भी।

पाकिस्तान

पाकिस्तान भारत से कट कर बना है। पाकिस्तान का अपना कुछ भी नया नहीं है। वैदिक सिन्धु वहां आज भी गतिमान है भरतपुत्र तक्ष की तक्षशिला, वहीं रह गई है। चाहे पाकिस्तान हो या हिन्दुस्थान, दोंनों देशों के निवासियों की नसों में आर्य पुरखों का रक्त हिलोरें ले रहा है। आज भी पाकिस्तान में 'मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धव:' की ऋचा गूंज रही है। देश के विभाजन से पाकिस्तान अलग-थलग पड़ गया है। उसे जम्बूद्वीप भरतखण्ड आर्यावर्त हिन्दुस्थान से जुड़कर अखण्ड भारत की कल्पना को साकार करना चाहिए। क्या उनकी आत्मा हिन्दुस्तान से मिलने के लिए मचल नहीं रही होगी? नृसिंह भगवान का जन्म पाकिस्तान में हुआ था। रामपुत्र लव की नगरी लाहौर है। पाकिस्तान पूर्व आर्यावर्त हिन्दुस्थान है वहां परुष्णी बह रही है।

विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में शिव भगवत्तत्व

• रामशरण युयुत्सु

सृष्टि के कार्यकलापों पर विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि इसके प्रत्येक कार्य अवयवों में एक ही व्यवस्था है। सृष्टि की यही व्यवस्था हमें सोचने को विवश करती है कि इस सम्पूर्ण सृष्टि-रचना के पीछे अवश्य ही कोई एक दिव्य एवं विशाल शक्ति या कहें मस्तिष्क सदैव कार्यरत है। वही स्रष्टा या परमात्मा के नाम से जाना जाता है। उसे हम देख नहीं सकते, परन्तु उसकी उपस्थित शक्तियों को देखकर उसकी विद्यमानता का अनुभव कर सकते हैं। जगत में जो कुछ स्थावर-जंगम है, यह सारा ईश्वर से ही व्याप्त है, परन्तु भगवान में श्रद्धा-विश्वास होने पर ही उसका तत्त्व-रहस्य समझ में आ सकता है।

जैसे जल के परमाणु, भाप, बादल, बून्दें और ओले सब जल ही हैं, वैसे ही सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, व्यक्त-अव्यक्त, जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, सत-असत् आदि जो कुछ भी है, वह सब भगवान का स्वरूप है। यह सभी भगवान के स्वरूप का तत्त्व है, तथा वे अज, अविनाशी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही स्वयं दिव्य अवतार धारण करके प्रकट होते हैं। उनका दर्शन, भाषण, चिन्तन, वन्दन आदि करके सभी प्राणी पवित्र हो जाते हैं। यह उनके स्वरूप का रहस्य है। भगवान उत्पत्ति और विनाश से रहित होते हुए भी, मूढ़ मनुष्यों को जन्म लेते हुए और विनष्ट होते हुए से प्रतीत होते हैं। वास्तव में यह उनका आविर्भाव (प्राकट्य) और तिरोभाव (अन्तर्धान) होता है, भगवान श्री कृष्ण जब कारागार में प्रकट हुए, तब चतुर्भुज रूप में ही प्रकट हुए थे। उनका मनुष्य की भांति बालक रूप में जन्म नहीं हुआ था।

ओम् (ओ३म्) परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है। इसमें ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन है। इसमें ईश्वर के सभी गुण तत्त्व आ जाते हैं। स्वामी रामतीर्थ जी की अनुमति है कि ईसाई आदि धर्मों में प्रार्थना आदि के अंत में जो 'आमीन' अथवा 'एमन' पढ़ा जाता है, वह ओ३म् का ही रूपान्तर है, क्योंकि आर्य लोग प्रार्थना आदि के अंत में ओ३म् का पाठ करते थे। वही पाठ अन्य शब्दों की भांति एमन और आमीन में बदल गया। कोई–कोई तो यह भी अनुमान करते है कि बाईबल में जो ईश्वर कहता है कि मेरा नाम आई एम है, यह ओ३म् ही की ओर संकेत करता है। बौद्ध लोग 'मणि पद्मे हूं' का जाप करते हैं तथा जैन मत में भी ओ३म् का आदर है। वे लोग इसे बीज अक्षर मानते हैं। खालसा पंथ की ग्रंथ वाणी में भी '१ओंकार सतनाम' 'ओंकार वेद निर्भय' इत्यादि अनेक

स्थलों में ओ३म् का वर्णन है। तंत्र ग्रथों में तो ओ३म् का सहस्त्रों बार वर्णन आता है। यह ओ३म् (ॐ) अक्षर ही अपर ब्रह्म है और यही अक्षर ही परब्रह्म है। इस अक्षर को ही जानकर जो जिसकी इच्छा करता है, वही उसका हो जाता है।

वैदिक काल में ओ३म् ब्रह्म, इन्द्र, वरुण आदि रूप में एक ही परमेश्वर की उपासना चलती थी। बाद में जगत की सृष्टि, स्थिति और लय को लेकर भगवान के ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप त्रिमूर्ति की उपासना चल पड़ी। पुराण काल में इन तीन देवों को मुख्य माना गया। शिवलिंग पर जो त्रिपुण्ड्रम= लगाते हैं। उसकी तीन रेखाएं शिव का त्रिमूर्ति होने का सूचक है।

शिवलिंग को बहुत स्थानों पर उंकार-लिंग (ओंकार लिंग) भी कहा जाता है। ओ३म् शब्द में तीन अक्षर अ,उ,म् अर्थात् परमात्मा शिव के ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर द्वारा स्थापना, पालना एवं विनाश के दिव्य कर्त्तव्यों को तथा चन्द्रविन्दु ँ स्वयं ज्योतिबिन्दु परमात्मा त्रिमूति-—शिव को स्पष्ट करता है। अन्य धर्मों एवं भाषाओं में भी प्राय: तीन अक्षर ही होते हैं। जैसे GOD (गॉड) आदि। GOD शब्द में तीन वर्ण G, O तथा D भी परमात्मा के तीन कर्मों को स्पष्ट करते हैं। अर्थात G -Generation (उत्पत्ति), O-Operation (समृद्धि, वृद्धि अथवा पालना) तथा D-Destruction (विनाश)। कुरान शरीफ में भी ऐसे तीन अक्षर अलिफ, लाम, मीम का जिक्र है। कहा जाता है कि यह हरुफ़, मक़त आत और असरारे-वही में से हैं।

किसी असलहत से खुदा ने इनके मानीबन्दों पर जाहिर नही फ़रमाये, सल्ले, अल्लाह, अलैहा, आलैहा, वसलम ने इतना फ़रमाया कि मैं नहीं कहता कि अलम एक हरुफ है, बल्कि ये तीन हरुफ़ पर दसने की है।[१]

अब प्रश्न है कि सद्गुरु है कौन? यह गुरु है घट-घट वासी परमेश्वर। सद्गुरु है, सबको प्रकाश देने वाला, मन को सच्ची राह बताने वाला। वह सभी का है, न विशेष रूप से हिन्दू का, न मुसलमान का, न सिक्ख का,न ईसाई का, न पारसी का, 'गुरु गोपालु पुरुषु भगवान'। गुरु बाहर भी है और भीतर भी। जिस रूप में चाहता है, दर्शन देकर शिष्य को कृतार्थ करता है। गुरुग्रंथ में परमेश्वर के बहुत से नाम आये हैं, १उँकार, सतिनाम, करता पुरुखु, निरभउ, निरवेरु, अकाल मूरति, अजूति, शैभं, गुरुप्रसादि।[२] सिक्खों के मत स्थापक गुरु नानक भी निराकार, ज्योति-स्वरूप की महिमा करते थे। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने तो अकाल स्मृति नामक ग्रंथ में —'दे शिवा वरदान मोहे' कह परमात्मा शिव की शक्ति को पुकारा है।

सिन्ध (पाकिस्तान) से आये ब्रह्मकुमारी के मतानुसार लोग परमात्मा को निराकार तो मानते ही हैं, परन्तु वे निराकार शब्द को यह मान लेते हैं कि परमात्मा का कोई आकार अथवा रूप नहीं है। परमात्मा निराकार इसलिए कहा जाता है कि जैसे आत्माओं ने मनुष्यों जैसा स्थूल आकार धारण किया है तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर ने देवाकार अर्थात्

सूक्ष्म आकर धारण किया है, परन्तु परमात्मा का वैसा आकार नहीं है, क्योंकि परमात्मा का पिण्ड अथवा शरीर है ही नहीं। परमात्मा को तो अशरीरी, दिव्य, ज्योतिर्मय बिन्दु ही है। जिसकी याद में भारत में ही नहीं बल्कि विश्व भर में स्थान–स्थान पर शिवलिंग स्थापित किये हुए हैं। बिन्दु–सम रूप वाले निराकार परमात्मा मनुष्यात्माओं का कल्याण करने वाले हैं। इसलिए उनका गुणवाचक नाम अथवा दिव्य नाम शिव है। यहां शिव से हमारा अभिप्राय शंकर से नहीं है।[३]

कठोपनिषद् एवं श्वेताश्वेतर उपनिषद में आत्मा और परमात्मा का एक ही रूप मानते हुए, परमात्मा का निवास मनुष्य (जीवात्मा) के ह्रदय में बताते हुए लिखा है कि इस जीवात्मा के हृदयरूप गुफा में रहने वाला परमात्मा सक्ष्म से अति सक्ष्म और महान से अति महान हैं। परमात्मा की उस महिमा को कामना रहित और चिन्तारहित कोई विरला साधक ही सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वर की असीम कृपा से ही देख पाता है।[४]

जैनधर्म में संसार को अनादि-अनन्ता माना जाता है। जैनी मानते हैं कि इस जगत के बनाने वाला कोई नहीं है। जैन दर्शन स्पष्ट कहता है कि 'ईश्वर' नाम की ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो सृष्टि का संचालन या संहार कर सके। जिस प्रकार जैन लोग 'चित्त' और 'अचित' अर्थात जड़ और चेतन दो ही परतत्त्व मानते हैं अर्थात जीव के बिना दूसरा चेतन तत्त्व ईश्वर को नहीं मानते। कोई अनादि सिद्ध ईश्वर नहीं, ऐसा बौद्ध लोग भी मानते हैं। पारसी धर्म में एक ईश्वर की उपासना की जाती है। उन्होंने ईश्वर को 'होरमज्द' के नाम से पुकारा है। होर, अहुर माने असुर, जनमानस में असुर शब्द राक्षस के लिए रूढ़ हुआ । परन्तु अवेस्ता में इसका अर्थ है–सुर, देव, भगवान। मज़्द कहते हैं महान को और मज़्द बना है महत् से। इसलिए होरमन्द या अहुरमज़्द का अर्थ हुआ महान+देव=महादेव। कुछ लोग ऐसा मानते है कि होर या अहुर है चेतन-जगत और मज़्द है जड़-जगत् अर्थात् होरमज़्द है जड़ और चेतन जगत का स्वामी परमात्मा।

यहूदियों के मतानुसार उनके मत-स्थापक हज़रत मूसा ने होरव पहाड़ पर झाड़ी के निकट परमेश्वर यहोवा (जहोवा) को एक लौ (प्रकाश) के रूप में देखा और ईश्वरीय वाणी सुनाई पड़ी-'एहे अशेर एहे' (सोहमस्मि-मैं वहीं हूं, जो मैं हूं)। इसी को कहते है-यहोवा (यही है वह) सर्वव्यापी परमेश्वर।[५]

ईसाई और यहूदी लोग परमात्मा को जेहोवा (जोवा) में देखते हैं। वह शब्द भी शिव (God) से जेहोवा (JEHOWA) रूपान्तर हुआ मालूम होता है। सम्भव है इसी लिए पुराने जमाने में यहूदी लोगों में यह रिवाज रहा है कि वे शपथ लेते समय शिवलिंग आकार का एक पत्थर हाथ में लेते थे, जैसे भारत में लोग गीता हाथ में लेते हैं।

ईसाई परमात्मा को प्रकाश के रूप में मानते हैं। वे कहते हैं- God is light, वह एक दिव्य ज्योति है। इसीलिए शायद मंदिरों में दीपकों की तरह गिरजाघरों में

मोमबत्तियां उसी अशरीरी ज्योति स्वरूप परमात्मा की याद में अथवा प्रतीक रूप में जलाई जाती है। ईसाई परमात्मा को एक ही मानते हुए कहते है कि वह जगत्–पिता, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और परम पवित्र है।

इस्लाम धर्म में अल्लाह पर ईमान लाने के मतलब से स्पष्ट किया है कि अल्लाह एक है, न तो उसके जैसा कोई है और न कभी होगा, न तो उसके जैसा कोई रूप है और न वह कोई रूप धारण करता है। सारी सृष्टि उसकी बनाई हुई है, वही सबका पालन करता है।[६]

इस्लाम धर्म वालों में निराकार परमात्मा का प्रतीक मक्का में रखा पवित्र पत्थर'संगे असवद' भी है, जिसे भारत के लोग मक्केश्वर भी कहते हैं। मुसलमान आज भी जब हज़ करने जाते हैं, तो उस स्मरण-चिन्ह (संगे–असवद) को श्रद्धा से चूमते हैं।

चीन में लाओत्से ने जिस धर्म को जन्म दिया, उसका नाम है ताओ धर्म। 'ताओ'शब्द बड़ा गूढ़ है। ताओ परब्रह्म है, विश्व का मूल स्वयं सिद्ध है, असीम है, अनादि है। उसे ग्रहण करना, उसका चिन्तन करना कठिन है। उसका कोई नाम नहीं, रूप नहीं, वह सब में है, सबसे ऊपर है।[७]

आचार्य विनाबा भावे के मत से 'ताओ' शब्द बना है, तन् धातु से। 'तनु–विस्तारे' से ताओ बना है। उसका अर्थ है, सब जगह व्याप्त रहने वाला तत्त्व। चीनी भाषा में ताओ को सहज मार्ग से पाने का नाम 'तेह्' है। चीन में बौद्ध धर्म का बाहुल्य होने पर देखा गया है कि वहां बहुत से लोग परमात्मा को ध्यान में लाने के लिए पिण्डाकार रूप में एक गोल पत्थर को आधार (stand) पर रखकर, जिसे वे 'पवित्र पत्थर'(Holy Stone) मानते हैं,(के माध्यम) का प्रयोग करते हैं। संभव है यह भारतीय शिव पूजा पद्धति का ही बदला हुआ रूप है।

ब्रह्मकुमारी मतानुसार आत्मा स्वयं परमात्मा नहीं है और परमात्मा नाम से सहित भी नहीं है; बल्कि उसका दिव्य और गुणवाचक नाम शिव है। उसका दिव्य रूप ज्योति–बिन्दु है, जिसकी स्थूल प्रतिमा भारत में सोमनाथ, अमरनाथ, विश्वेश्वरनाथ, महाकालेश्वर, त्रयम्बकेश्वर,रामेश्वर, गोपेश्वर, पापकटेश्वर, मुक्तेश्वर तथा पशुपतिनाथ आदि के अतिरिक्त प्राय: सभी धर्मों वाले किसी न किसी रूप में शिव को ही याद करते हैं। विश्व में यूनान, मिश्र, रोम, बेबीलोन की सभ्यताएं प्राचीन मानी गई है। बताया गया है कि यूनान में शिव-प्रतिमा को वहां के लोग 'फल्लूस', मिस्र के लोग 'ओसिरिस' रोम के लोग 'पियपस' और बेबीलोन में 'शिउन' कहते हैं।

विद्वानों का मत है कि फल्लूस शब्द फलेश का बदला हुआ रूप है। शिव को फलेश इसलिए मानते थे कि वह जल्दी फल देने वाले है। ओसिरिस 'ईश' से बना हुआ है। शिउन शब्द तो शिव से बहुत ही मिलता जुलता है ही। वैसे ही ईसाई और युहूदी लोग भी शिव (SHIVA) को इससे मिलते जुलते शब्द (JEHIWA) नाम से पुकारते हैं।

भारतवर्ष में तो लाखों की संख्या में शिवलिंग के मंदिर विद्यमान है। भगवान राम ने स्वयं रामेश्वर में शिव मंदिर की स्थापना की थी। अरब देश मक्का शरीफ में संगे असवद नामक पत्थर के पूजन के अतिरिक्त वहां जम-जम नामक कुएं में एक शिवलिंग स्थापित हैं, जिसकी पूजा खजूर की पंक्तियों में होती हैं। रोमन कैथोलिक रोम नगर में भी इस आकार (शिवलिंग) के पत्थर का पूजन होता है। नेपाल में पशुपतिनाथ का बहुत बड़ा मंदिर है, शिव की बहुत बड़ी प्रतिमा इस मंदिर में है। इजिप्त (मिश्र) में शिव की मूर्तियों का दूध से स्नान कराकर पूजन होता है। तुर्किस्तान के वाविनल नगर में एक हजार दो फुट का एक महालिंग है। यह संसार का सबसे बड़ा शिवलिंग है।

अमेरिका के ब्रजील प्रदेश में बहुत से प्राचीन शिवलिंग मिलते हैं तथा यूरोप के 'कोरिय' नगर में प्राचीन शिव-पार्वती मंदिर है। इटली के अनेक पादरी अब भी शिवलिंग की पूजा करते हैं तथा ग्लासगो (स्कॉटलैंड) में एक सुवर्णाच्छादित शिवलिंग है, जो बहुत भक्ति-भाव से पूजा जाता है। फीजियन के एटिस-निनवा नगर में ऐषीर नामक शिव मंदिर तथा 'पंज शेर' और 'पंजवीर' नाम से अफरीदिंस्तान, चित्राल,काबुल, बलख–बुखारा में भी शिवलिंग का पूजन होता है। ईरान देश में अब्बास नगर में अति सुन्दर शिव मंदिर तथा अनाम प्रदेश में तो स्थान-स्थान पर शिव मंदिर हैं। वहां पर गणपति मूर्तियों पर शिवलिंग धारण किया हुआ है।

बालि द्वीप, जो जावा के निकट है, के लागों का आराध्यदेव शंकर है। कम्बोडिया में अंकीर झील पर बेयन नाम का शिव-मंदिर तथा भव-द्वीप (जावा) में ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर के मंदिर के मध्य में निराकार शिव का मंदिर सबसे ऊँचा है। इसी के नकल से कुञ्जपुरा (करनाल) में त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर) की त्रिमूर्ति के ऊपर शिव की मूर्ति को स्थापित किया गया है। मारीशिस द्वीप जो अफ्रीका के पास है, वहां चिरकाल नामक तीर्थ पर भगवान शंकर का मन्दिर है। जहां शिवरात्रि के मेले पर ४०–५० हजार तीर्थयात्री दर्शनार्थ आते हैं।

नये पुरातात्त्विक अनुसंधानों ने यह भली-भांति प्रमाणित कर दिया है कि विश्व की अद्यवत ज्ञात सभ्यता 'सिन्धु घाटी की सभ्यता' है और उसके प्राप्त अवशेषों से भी शिवलिंग की आराधना एवं उपासना प्रभावित होती है।

प्रश्न यह भी उत्पन्न होता है कि शिवलिंग की आराधना भी क्या कामुकता का मूल रूप है? इनका उत्तर मानव मनोविज्ञान एवं प्रकृति विज्ञान में निहित है। प्राणीमात्र का मूल धर्म सर्जन है। सर्जन जीवन की सहज चेतना का संवर्द्धन अथवा नियति का विलास है। परिणामतः जीवन का मूल तत्त्व होता है गति; लेकिन इस गति का कारण तत्त्व है आकर्षण। आकर्षण राग का ही पर्याय कहा जा सकता है। यही सचेतन अनुराग भाव काम का पूर्ण रूप है। 'काम' भारतीय–मानस के लिए एक सीमित अर्थ 'सैक्स' के लिए कभी प्रयुक्त नहीं हुआ है; बल्कि वह अपने कामपरक संदर्भों का उद्घाटन जिजीविषा की

अर्थ व्यंजना के माध्यम से करता रहा है। जिजीविषा एवं सर्जना का रूपात्मक अथवा विम्बात्मक प्रतीक ही लिंग है, जबकि प्रत्यक्ष रूप में यह संवर्द्धन एवं विश्व कल्याण का प्रतिनिधि है। इस सर्जन मूलक प्रतीक के रूप में लिंगाराधाना की विश्वव्यापकता को स्थापित किया जा सकता है।

प्रस्तुत अनुशीलन के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि परमात्मा की स्वीकृति, उपासना एवं व्यापकता यद्यपि विभिन्न धर्मों एवं मत–मतान्तरों में भिन्न–भिन्न पद्धतियों पर ही नहीं हुई है, अपितु उसमें संज्ञक शब्दों की विविधता भी है। अत: गम्भीर विश्लेषण के आधार पर प्रमाणित किया जा सकता है कि इन विविधता के मूल में न केवल भाषा वैज्ञानिक समरूपता एवं समता है; बल्कि अवधारणापरक गम्भीर समानता भी इनमें विद्यमान है। इन विविध धर्मों में भगवत्तत्त्व को एक ही मूल तत्त्व शिव के रूप में स्वीकार किया गया है।

सन्दर्भ:

१. पहिला पारा, सूरहेबकर, कुरान शरीफ, रनत एण्ड कंपनी, दिल्ली
२. जपुजी साहिब–१ गुरु ग्रन्थ साहिब, शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर
३. योग की विधि और सिद्धि, ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय, बाबू रोड़
४. कठोपनिषद् अ. १, श्लोक–२०, श्वेता–३
५. व्यवस्था विवरण ३१/३० तथा ३२/१४ धर्मशास्त्र (बाईबल) बाईबल सोसायटी आफॅ इण्डिया, एम.जी.रोड़ बंगलौर
६. कुरान शरीफ २२–६२(प्रकाशक उपरोक्त)
७. ताओ उपनिषद् १७–७–४

आधार पुस्तकें :

१. सत्यार्थ प्रकाश, जन ज्ञान प्रकाशन, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली।
२. धर्म क्या कहता है? खण्ड १से १२, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी।
३. साप्ताहिक पाठ्यक्रम ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय, आबू-पर्वत (राज.)

श्री आंगिरा शोध संस्थान
४१९/३, शान्ति नगर, पटियाला चौक
जीन्द–१२६१०२(हरियाणा)

विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण, पावंटा साहिब एवं त्रिलोकपुर, सुनियोजित विकास में अग्रसर

"सुनियोजित विकास ही अच्छे स्वास्थ्य एवं उज्जवल भविष्य का आधार है
भूकंपरोधी तकनीकी अपनाना ही जीवन की नैय्या की पतवार है"
"जैसे मानव शरीर को संचालित करने के लिए रक्त धमनियों का कार्य है
वैसे ही सुनियोजित आवास एवं विकास के लिए सड़कें व रास्ते अनिवार्य हैं"

हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा सन् 1986 में नाहन एवं पांवटा साहिब शहर व आसपास के गांव के सुनियोजित विकास के उद्देश्य से इस क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश नगर एवं ग्राम योजना अधिनियम, 1977 लागू किया गया था तथा ग्रामीण क्षेत्र के सुनियोजित विकास हेतु जुलाई 2000 में पांवटा साहिब विशेष क्षेत्र का गठन किया गया। उक्त एक्ट लगने से जहां एक ओर शहर तथा इसके साथ लगे हुए गांव के भावी विकास व पर्यावरण को संततुलित रखने में मदद मिलेगी वहीं दूसरी ओर तीव्र विकास करना संभव हो पाएगा। आज यह देखने में आया है कि अत्यधिक शहरीकरण, जो कि विकास का सूचांक है, की बढ़ती प्रवृति से शहरी भूमि की उपलब्धता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। यदि अभी से योजनाबद्ध ढंग से विकास कार्य नहीं किया गया तो आने वाले कुछ ही समय में शहर व आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याएं बढ़ती जाएगी। जैसे अव्यवस्थित यातायात प्रदूषण, आवश्यक सुविधाओं का अभाव आदि। सुनियोजित विकास के लिए जनहित में सरकार द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार निर्माण से पूर्व संबंधित विभाग से स्वीकृति लेना आवश्यक है तथा स्वीकृति के अनुरूप ही निर्माण कार्य किया जाए। स्वीकृति के अनुरूप निर्माण कार्य न करना सरकारी नियमों का उल्लघन है तथा क्षेत्र के सुनियोजित विकास के लिए बाधक है।

हिमाचल प्रदेश भरपूर प्राकृतिक व सांस्कृतिक विरासत में समृद्ध एक पहाड़ी प्रदेश है। इसलिए प्राकृतिक सौंदर्य एवं सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखने में पर्यावरण का भी विशेष ध्यान रखना होगा। इसलिए प्राधिकरण की ओर से लोगों से अनुरोध है कि सुनियोजित विकास हेतु सहयोग दें।

अध्यक्ष
विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण,
पावंटा साहिब एवं त्रिलोकपुर।

आज की बचत'' ''कल की सुरक्षा''

लघु बचत योजना

अपने परिवार के सुनहरे भविष्य तथा राष्ट्र व प्रदेश की खुशहाली के लिये लघु बचत योजनाओं में अधिकाधिक राशि जमा करवा कर महत्त्वपूर्ण योगदान दें–

1.	किसान विकास पत्र	8 वर्ष 7 मास में धन दुगना। एक समय पूर्ण निकासी एवम् नामांकन की सुविधा।
2.	डाकघर मासिक आय योजना	8% ब्याज प्रति माह देय। इस के अतिरिक्त 5% की दर से बोनस 6 साल बाद दिया जाता है।
3.	पाँच वर्षीय आवर्ती जमा	7.5% चक्रवृद्धि ब्याज, 50/– रूपये के खाते तक जीवन बीमा की सुविधा।
4.	6वर्षीय राष्ट्रीय बचत पत्र	8% चक्रवृद्धि ब्याज। आयकर की धारा 88 के अन्तर्गत आयकर में छूट।
5.	वरिष्ठ नागरिक योजना	9% ब्याज त्रैमासिक देय ।

दसवीं पास बेरोजगार महिलाओं के लिये विशेष आकर्षण

आप महिला प्रधान क्षेत्रीय योजना के अन्तर्गत महिला अभिकर्ता बन सकती हैं। इस योजना के अन्तर्गत 4 प्रतिशत कमीशन देय है।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

1. अतिरिक्त जिला दण्डाधिकारी, कुल्लू।
2. लघु बचत अभिकर्ता, जिला कुल्लू।

उपायुक्त एवम् अध्यक्ष
लघु बचत जिला कुल्लू।

With Best Compliments

from :

Zeon Lifesciences Ltd.

Rampur Road, Village Kunja,
Paonta Sahib (H.P)
Ph.: 01704-222313,222643

Corporate Office :
78/3, 2nd Floor, Janpath
New Delhi-110001
Ph. No. 011-23353191, 23353192
Fax- 23718056

चमेरा पावर स्टेशन-२ करियाँ,
सीएसआर-सीडी २००८-०९ के अंतर्गत चंबा जिले में किए गए एवं प्रस्तावित विकास कार्यक्रमों की एक झलक

राजीव हस्तु
मुख्य अभियंता–प्रभारी

१. खोपर गांव के लिए जलपूर्ति हेतु व्यय २.०६लाख
२. भडियां कोठी गर्वनमैंट हाई स्कूल में कम्पयुटर कक्ष का निर्माण २.८५ लाख
३. धीमला गर्वनमैंट मिडल स्कूल की कम्पयुटर लेब का निर्माण ४.२५ लाख

प्रस्तावित सेवा कार्य योजनाएं :

१. गागल हाई स्कूल में कम्पयुटर कक्ष हेतु २.१४ लाख व्यय की संभावना। २. खेल का मैदान और कम्पयुटर स्कूल पर ३.०४ लाख रुपये व्यय की संभावना। गुज्जर कंलसूई ८० हजार रुपये विकास कार्य पर व्यय। वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय सरोल व सैंटर प्राइमरी स्कूल भडियां में डैस्क हेतु २.७५ लाख रुपये खर्च किये जा रहे हैं। जिला बालीबाल प्रतियोगिता पर १७ हजार, विकलांग बच्चों पर २४ हजार, निशुल्क चिकित्सा केंप पर ६० हजार तथा विकलांग श्रीधर के उपचार हेतु चमेरा पावर स्टेशन २ द्वारा १ लाख ८० हजार खर्च करने का प्रावधान किया गया है।

एनएचपीसी चमेरा–II निर्मित
भड़ियाँ हाईस्कूल की प्रयोगशाला का चित्र

श्री सिद्ध बाबा बालक नाथ मन्दिर न्यास दियोटसिद्ध
जिला हमीरपुर (हिमाचल प्रदेश) न्यास स्थापना 16.01.1987

२२वीं जयन्ती के शुभ अवसर पर बाबा जी की सुख समद्धि का आर्शीवाद सदैव बना रहे, बाबा जी से यही प्रार्थना है। भारतीय संस्कृति की विराट पृष्ठभूमि में विद्यमान दिव्य स्थलों में से उत्तरी भारत का प्रसिद्ध पीठ श्री सिद्ध बाबा बालक नाथ के परमधाम शिवालिक पर्वतों श्रद्धालुओं में पुण्य प्रतापों के बल पर निरन्तर महिवान है। यह दिव्य स्थल हि०प्र० के जिला हमीरपुर में दियोटसिद्ध नामक सुरमई पहाड़ी पर प्रतिष्ठित है। यह दिव्य स्थल चारों ओर से सड़कों से जुड़ा हुआ है श्री सिद्ध बाबा बालक नाथ द्वारा दियोटसिद्ध में अपना दिव्य स्थान स्थापित करने से पूर्व शाहतलाई में अपना कर्म स्थल बनाया था। शाहतलाई की दूरी इस इस पावन स्थल से ५ कि०मी० है। हिमाचल प्रदेश हिन्दू सार्वजनिक संस्था और पूर्व विन्यासअधिनियम १९८४ के अर्न्तगत दिनांक १६.०१.१९८७ से जब से मन्दिर के संचालन को मन्दिर न्यास ने संभाला है तब से लेकर श्रद्धालुओं व दानियों द्वारा बाबा जी की पवित्र धरती पर श्रद्धालुओं के कदम पड़ते ही उनका स्वागत द्वारों से भव्य स्वागत, जगह–जगह पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्थायें, वर्षा शालिकायें, विश्राम करने के लिए बैंच, बिना लाभ–हानि के दो कंटीनें, नि:शुल्क चिकित्सा सेवा, शौचालयों व स्नानागारों की व्यवस्था जानकारी के लिए स्वागत द्वारों में पूछताछ केन्द्र, खोई वस्तुओं और व्यक्तियों को ढूंढने के लिए पी०ए० सिस्टम की व्यवस्था कक्ष केन्द्र भी स्थापित किया गया है। श्रद्धालुओं के लिए मन्दिर परिसरमें दर्शनार्थ स्थलों में मुख्यत: गूफा दर्शन बाबा जी का अखण्ड धूना, धार्मिक पुस्तकालय, भृर्तहरि मन्दिर, राधा–कृष्ण मन्दिर चरणपादुका व बाबा जी की तलाई दर्शनीय स्थल है। न्यास स्थापना १६.०१.१९८७ से आज तक विकास की लम्बी यात्रा तय की है जिसने मुख्यत: स्वागतद्वारों के निमार्ण, बस स्टैंड का निर्माण, भव्य सरायों का निर्माण, लंगर भवन, बकरा स्थल, महिलओं के लिए गुफा दर्शन पलेटफार्म, शौचालय व स्नानागारों , पुरूष व महिलाओं की आवाजाही के अलग रास्तों व शिक्षा में जनता की सेवा में स्नात्कोतर महविद्याल, संस्कृत महाविद्यालय, उच्च विद्यालय, माडल स्कूल के भवनों का निर्माण किया गया है तथा शिक्षा संस्थानों का संचालन किया जा रहा है। भविष्य के निर्माण के लिए न्यास प्रस्तावित नई योजनाएं:–

आधुनिक बस स्टैण्ड के द्वितीय चरण के निर्माण व पेयजल आपूर्ति की योजना के विस्तार पर अनुमानित २.०० करोड़ रूपये की राशि व्यय करने का अनुमान है तथा २० निर्माण कार्यों को आरम्भ करने की योजना है। जिसमें यात्रियों को भविष्य में बड़े पैमाने पर ठहरने के लिए मन्दिर परिसर में विभिन्न स्थानों पर सरायों का निर्माण करना, स्नानागार, शौचालय, मन्दिर परिसर के रास्तों में फल्ड लाईट लगाने का कार्य इत्यादि कार्यों की योजना चरणबद्ध तरीके से संचालित की जा रही है इन योजनाओं पर लगभग १.५० करोड़ रूपये की राशि व्यय करने का अनुमान है।

श्रद्धालुओं/दानियों से न्यास प्रशासन का परम निवेदन रहेगा कि मन्दिर के विकासातमक कार्य यज्ञ में दान रूपी आहूति डालकर पुण्य के भागी बनें और बाबा जी का आर्शीवाद व वांछित फल पायें। दान की गई राशि की रसीद आवश्य प्राप्त करें और आयकर अधिनियम की धारा ८० जी के अर्न्तगत आयकर से छूट का लाभ उठायें।

मदन लाल शर्मा,
मन्दिर अधिकारी,
न्यास बाबा बालक नाथ मन्दिर
दियोट सिद्ध जिला हमीरपुर
हि०प्र०
का–०१९७२–२६६३५४

सुखदेव सिंह,
(हि०प्र०से०)
उपमण्डलाधिकारी
एवं अध्यक्ष न्यास बाबा बाबा बालक
नाथ मन्दिर दियोट सिद्ध स्थित बड़सर
जिला हमीरपुर हि०प्र० का०:०१९७२–२८८०४५

अभिषेक जैन
(भा०प्र०से०)
उपयुक्त एवं आयुक्त
बाबा बालक नाथ मन्दिर
दियोटसिद्ध स्थित हमीरपुर हि०प्र०
का० ०१९७२–२२४३००